अध्याय–7
शोध का सारांश एवं निष्कर्ष

7.1 सारांश एवं निष्कर्ष

गांधी की साहित्य–कृतियों में से 'हिंद स्वराज'' नामक एक अनूठी व अद्वितीय पुस्तक है। इस पुस्तक में उन्होंने भारतवर्ष की समग्र स्थिति व भारत में अपेक्षित सुधारों को लिखा है तथा एक तरह से अपना दर्शन लिखा है। इस पुस्तक में कुल बीस अध्याय हैं, जिनमें एक अध्याय सिर्फ 'शिक्षा'' पर लिखा है। इस अध्याय में गांधी ने मानव–जीवन की नीव (या, मानव–जीवन का आधार) बनाने वाली नीति की शिक्षा देने के लिए बहुत जोर देकर कहा है और ऐसी शिक्षा के न होने पर बाकी पदार्थ विज्ञानों की शिक्षा सहित अन्य सभी प्रकार की शिक्षाओं, जो उस समय प्रचलन में थी और आज भी प्रचलन में हैं, को अनौचित्य पूर्ण बताया था। किंतु उक्त सबसे उत्तम व अनिवार्यतः वाँछित शिक्षा, 'नीति की शिक्षा'', क्या है इस पर स्पष्ट रुप से हिंद स्वराज के उक्त शिक्षा नामक अध्याय में नहीं पाया गया।उक्त नीति की शिक्षा, जिसको विश्व के कल्याण पथ प्रदर्शक व भारत वर्ष सहित अनेक देशों को गुलामी की जंजीरों से मुक्त कराने का नेतृत्व करने वाले और महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले राष्ट्रपिता व महात्मा संबोधनों से विश्वप्रसिद्धि प्राप्त मोहनदास करमचंद गांधी (गांधी) ने मानव जीवन हेतु सर्वप्रथम व अपरिहार्य शिक्षा कहते हुए ऐसी शिक्षा दिए जाने का आवाहन किया था, का प्रचलन नहीं पाया गया। साथ ही उन शिक्षाओं का भी ज्ञान हुआ है जो गांधी ने अपने अनुयायियों को यरवदा जेल में रहते हुए पत्रों के माध्यम से दी थी और जिनको गांधी की 'मंगल प्रभात'' नामक पुस्तक में दिया गया है; किंतु नीति शिक्षा क्या है, पर स्पष्ट रूप से इस पुस्तक में भी नहीं पाया गया, हालाँकि नीति शिक्षा विषयक शोध के लिए मंगल प्रभात पुस्तक को सर्वोचित समझा गया। उक्त'नीति की शिक्षा''/ 'नीति शिक्षा''का अर्थ इत्यादि विषयक शोध की जिज्ञासा व औचित्य समीचीन समझा गया। प्रस्तुत शोध अन्तर्गत बारह शोध–प्रश्नों के माध्यम से गांधी की पुस्तक 'हिंद स्वराज'' के शिक्षा नामक अध्याय व पुस्तक 'मंगल प्रभात'' के परिप्रेक्ष्य में नीति शिक्षा क्या है सहित शिक्षा सम्बन्धी अन्य चार प्रश्नों पर तथा उक्त नीति शिक्षा वर्तमान में विश्वव्यापी ज्वलंत कुछ समस्याओं के संबंध में क्या समाधान कर सकती है से सम्बन्धी प्रश्नों पर गुणात्मक व दार्शनिक शोध विधि द्वारा शोध कार्य किया गया है। उक्त शोध प्रश्न इस प्रकार हैं: '''नीति शिक्षा' का क्या अर्थ हैं?'नीति शिक्षा' क्या 'धर्म शिक्षा' का पर्याय है? 'नीति शिक्षा' में किस/(किन) नीति (नीतियों) की शिक्षा दी जायें? 'नीति शिक्षा' के अन्तर्गत दी जाने वाली नीतियों के अर्थ क्या है? 'नीति शिक्षा' लोगों को किस आयुकाल में दी जाये? अर्थात्, यदि लोगों के किन्ही विशेष आयुकाल में 'नीति शिक्षा' दी जानी है, तो प्रत्येक आयुकाल में किस

प्रकृति की 'नीति शिक्षा' दी जाये? 'नीति शिक्षा' क्या किसी विशेष प्रकार की शिक्षा के साथ दी जाये? यदि हाँ, तो 'नीति शिक्षा', किन विशेष प्रकारों की शिक्षा के साथ दी जाये और किस गहराई की हद तक दी जाये?क्या 'नीति शिक्षा' अध्यापन–प्रशिक्षणार्थियों के लिये भी है? 'नीति शिक्षा' क्या बेरोजगारी की स्थिति का कारक नहीं होगी और क्या 'नीति शिक्षा' विद्यमान बेरोजगारी को दूर करने में सहायक होगी? क्या 'नीति शिक्षा' भ्रष्टाचार पर काबू पा सकेगी? क्या 'नीति शिक्षा' आतंकवाद व हिंसा पर काबू पा सकेगी? क्या 'नीति शिक्षा' गरीबी की स्थिति पर काबू पा सकेगी? क्या 'नीति शिक्षा' वैज्ञानिक व तकनीकी विकास में बाधा नहीं होगी? क्या 'नीति शिक्षा' वैश्वीकरण में बाधा नहीं होगी?'नीति शिक्षा' क्या 'सकल राष्ट्रीय खुशहाली' (ग्रॉस नेशनल हैप्पीनेस–जी.एन.एच.) का पर्याय है?"

गांधी की नजर में नीति क्या है जिसकी शिक्षा देनी चाहिए, अर्थात् नीति शिक्षा क्या है (शोध प्रश्न–1), पहले इस प्रश्न पर अध्ययन किया गया और इसके साथ ही गांधी की दृष्टि में जो नीति है या नीतियां हैं, यदि कोई हैं, तो उन सबके अर्थ क्या है (शोध प्रश्न–3), इस बात पर अध्ययन किया गया है।

गांधी के अनुसार हम लोग प्रकृति के अनुसार प्रकृति में रहते हैं। प्रकृति को चलाने वाला जैसे चलाता है वैसे चलते हैं। और अगर प्रकृति के अनुसार नहीं चले तो दुष्परिणाम होते हैं। यह भी सत्य है कि प्रकृति को, अर्थात् सृष्टि को/सच को, किसी ने पूरी तरह से आज तक देखा नहीं है। यह भी किसी ने नहीं देखा है कि इस सृष्टि को बनाने वाला कौन है, और बनाने वाला इसको कैसे चलाता है, किन नियमों से चलाता है। किंतु भले ही इन प्रश्नों का हल आज तक प्राप्त नहीं हुआ हो, यह तो सत्य है ही कि प्रकृति है, प्रकृति सत्य है। अर्थात्,सृष्टि विश्वव्यापी सत्य है। लोग उसको किसी भी नाम से पुकार लेते हैं। कुछ उस प्रकृति के बनाने वाले और चलाने वाले को खुदा कहते हैं, कुछ उसको अल्लाह कहते हैं, कुछ उसे गॉड कहते हैं, और कुछ उसे ईश्वर कहते हैं इत्यादि। गांधी ने इस प्रकृति, प्रकृति–निर्माता और इसको चलाने वाले को सत्य कहा है। और उस सत्य को ईश्वर कहा है। अर्थात्, सत्य को ही ईश्वर कहते है। गांधी का कहना है कि संसार के लोगों को सबसे पहले इस सत्य को ही समझना चाहिए। इस सत्य प्रकृति में जितने भी जीव–निर्जीव हैं, उनको समझना चाहिए। क्योंकि यह सब को ज्ञात है और यह सब जगह विद्यमान है। गांधी ने मनुष्य के ऊपर प्रमुख जिम्मेवारी समझी है कि हर व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों को अपना जैसा ही समझे; अपने को और दूसरे व्यक्तियों को उस अदृश्य प्रकृति के बनाने वाले का अंश समझे; सभी में अपने को देखे और अपने में सभी को देखे; अपने को और दूसरों को एक ही के द्वारा पैदा किया हुआ समझे। ऐसा इसलिए जरूरी है क्योंकि किसी ने प्रकृति बनाने वाले को नहीं देखा है; व्यक्ति स्वयं प्रकृति बना भी नहीं सकता है;एक

लम्बे इतिहास बीतने के बाद व्यक्ति प्रकृति के रहस्य को समझनहीं सका है। इसलिए हम प्रकृति बनाने वाले के ऊपर अपना अधिकार समझनहीं सकते हैं; उसको मनुष्य नियन्त्रित नहीं कर सकता है और उसको मनुष्य जैसा चाहे वैसे चला भी नहीं सकता है। जब हमारा वश प्रकृति बनाने वाले और प्रकृति चलाने वाले के ऊपर है ही नहीं, तो हम सब को तुरंत ही उसकी बनायी चीजों को और उसके बनाए गए नियमों को बिना किसी शर्त के स्वीकार कर लेना चाहिए। और यदि ऐसा होता है तो हर व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह दूसरे व्यक्तियों को जीव और निर्जीव को अपना भाई–बहन समझते हुए एक ही बनाने वाले के द्वारा बनाए हुए समझे; सभी से उसी तरह व्यवहार करें जैसा व्यवहार वह दूसरों से अपने प्रति चाहता है; सभी को आदर करे।प्रश्न उठता है कि यह सब काममनुष्यों का ही क्यों है। कारण यह हैं कि इस प्रकृति में व्यक्ति/सत्य ईश्वर की अनूठी रचना है। मानव के पास सबसे अलग और उच्च तरह का मस्तिष्क है। मानव में सबसे अधिक विचार करने और तर्क करने की शक्ति है। मानव अपने स्थूल शरीर और शरीर के अंदर रहने वाले सूक्ष्म तत्वों को समझ सकता है। सूक्ष्म तत्वों में मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और आत्मा को जान सकता है। आत्मा और परमात्मा को समझने की शक्ति मानव में होती है। मानव में अन्य जानवरों की तरह शारीरिक बल तो होता ही है, जिसे पशुबल कहते हैं, और साथ ही साथ मनुष्य में आत्मा का बल, जिसे आत्मबल कहते हैं, भी होता है। मानव पशुबल और आत्मबल दोनों को समझ सकता है और उनका सदुपयोग कर सकता है। मनुष्य अपने अंदर स्थित वास्तविक 'स्व' को, अर्थात् आत्म, आत्मबल, आत्मा को पहचान सकता है। सत्य ही ईश्वर है। सृष्टि है; प्रकृति को चलाने वाले नियम हैं; और वह नियम भी सत्य ही हैं; तो मनुष्य का सबसे पहला कर्तव्य, अर्थात् धर्म यह है की वह प्रकृति को समझे और प्रकृति के नियमों को समझे और तदनुसार कर्म करे। इसी बात को गांधी ने नीति कहा है, अर्थात् सत्य को, प्रकृति को, ईश्वर को, खुदा को, अल्लाह को, प्रकृति निर्माता को, प्रकृति के चलाने वाले को पहचानना। यह है नीति। और ईश्वर के द्वारा संसार चलाने के नियम, अर्थात् नीति के नियम कभी भी नष्ट नहीं होते। यह हमेशा से सत्य रहे हैं और सत्य रहेंगे। ये नियम और यह सत्य संसार में सभी जगह व्याप्त हैं। ये नियम रहस्यमयी भी हैं और इसलिये कभी–कभी मनुष्य इनके निर्वचन करने में/समझने में गलती भी कर देता है। अर्थात्, कभी कोई नियम सच्चा प्रतीत होता है तो कभी झूठा। किंतु मनुष्य के समझ के बाहर होने के कारणये नियम झूठे नहीं होते, बल्कि मनुष्य के समझने की शक्ति के बाहर होते हैं। प्रश्न उठता है कि जिस चीज को हमने देखा नहीं, जिसे देख नहीं सकते, जिसमें कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकते, तो हम उसके सम्बन्ध में क्या करें। बात सही है, किंतु जो सत्य है उस सत्य की ओर निरंतर बढ़ते रहना चाहिए; बस यही सबका कर्तव्य है और इसी को मनुष्य का ध्येय समझना चाहिए। इसी को गांधी ने सत्याग्रह कहा है। अब प्रश्न उठता है कि इस सत्य/ईश्वर को कैसे प्राप्त करें। गांधी ने कहा है कि सीधी सी बात है कि सेवा करो; सेवा उसकी जिसने हम सबको बनाया।चूँकि हम सब

एक ही पैदा करने वाले की संतान हैं, इसलिए हम सभी लोगों का प्रथम धर्म है, परम धर्म है, मानव की सेवा करना। अर्थात्, मानव सेवा करना ही मनुष्य का सबसे पहला धर्म है, सबसे जरूरी धर्म है। इस धर्म को निभाने पर हम सभी अप्रत्यक्ष रुप से हम सबको बनाने वाले की सेवा करते हैं, अर्थात्, प्रकृति के बनाने वाले, प्रकृति के चलाने वाले, संसार में रहनेवाले, संसार में सभी कालों में रहने वाले, और आगे आने वाले समय में भी रहने वाले सत्य की / ईश्वर की सेवा करते हैं। अब प्रश्न पर विचार किया गया कि कैसे हम उस सत्य और ईश्वर को समझे। उस सत्य को, अर्थात् ईश्वर को, समझने के लिए मानव शरीर में उपलब्ध ज्ञानेंद्रियों और कर्मेंद्रियों द्वारा नहीं समझा जा सकता है। मानव का परम धर्म है, मानव–सेवा करना और सेवा करके उस सत्य को पहचाना जा सकता है। मानव–सेवा व्यक्ति तब कर सकता है यदि वह सदाचार करता है व सद्व्यवहार करता है। और सदाचार मन, वचन,व कर्म तीनों से करता है; तप और त्याग के साथ करता है; अपने को आत्म शुद्ध करता है;तथा दूसरों से विमोहित रहते और स्वार्थ भावना से रहित होते हुए करता है। तब इस दशा को प्राप्त करने के लिए व मानव धर्म निभाने के लिए मन, वचन, कर्म, तप, त्याग, आत्मशुद्धता, मोहविहीनता और निःस्वार्थभावयुक्त से सदाचार करने की दिशा में बढ़ने के लिए कुछ नियम का पालन करना जरूरी होता है। अनेक धर्मों में अलग–अलग नियम बताए गए हैं। किंतु गांधी ने कुल ग्यारह नियम बताये हैं। उक्त ग्यारह नियम सत्य की ओर बढ़ाने वाले हैं और इन्हें नीति के नियम कहते हैं। अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्वाद, अस्तेय, अपरिग्रह, अभय, अछूतपन मिटाना, शारीरिक मेहनत करके कमाना, नम्रता, स्वदेशी तथा सर्वधर्म–समभाव, ये ग्यारह नीति के नियम हैं।

अहिंसा पहला नीति नियम है। अहिंसा का नीति नियम/धर्म हमेशा से रहा है और रहता रहेगा; अर्थात्, अहिंसा सार्वकालिक प्रेम है, सब जगह व्याप्त प्रेम है अहिंसा और इस अहिंसा का पालन करना मनुष्य का सबसे पहला कर्तव्य है। अहिंसा भौतिक रूप में प्रेम नहीं है, बल्कि भावना के रूप में प्रेम है। अहिंसा बहुत लोगों के प्रति नहीं, बल्कि सभी जीव–निर्जीव के प्रति करनी होती है। अहिंसा आत्मा की शक्ति है, इसलिए बहुत उच्च प्रकार की शक्ति है अहिंसा। अहिंसाका व्यवहार समस्त मानव को अपने जीवन में करना चाहिए। अहिंसा का पालन करने पर मनुष्य सभी जीव को अपने समान समझता है। अहिंसा मनुष्य का एक कर्तव्य है; अहिंसा से किसी पर अधिकार नहीं बनता है, बल्कि अहिंसा करना/ अहिंसक व्यवहार करना प्राकृतिक कर्तव्य है। अहिंसा करने पर यह नहीं सोचा जाता है कि इससे अहिंसा करने वाले को फायदा क्या होगा, या अहिंसा से अहिंसा करने वाले के लिये क्या उपयोगिता होगी; बिना किसी लाभ के व बिना किसी स्वार्थ के सब से प्रेम करना; भावना से प्रेम करना; आत्मा से निकले आदेश की पालना बतौर प्रेम करना; आत्मबल से प्रेम करना होता है। अहिंसा प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है– चाहे वह व्यक्ति बहुत महान आत्माहो, या साधु–संत हो, या समाज में रहता हो, या राजनीति में हो,

या व्यापारी हो, या किसी भी प्रोफेशन का हो, या बच्चा हो, या जवान हो, या बूढ़ा हो। सभी को अहिंसा का पालन करना होता है। वास्तव में सच तो यह है कि इस प्रकृति में मनुष्य भी अन्य जानवरों की तरह पशु ही है, किंतु अपने अंदर कुछ विशेष बातों जैसे मस्तिष्क, विचारशीलता, तार्किकता, आत्मानुभूति करने की शक्ति, आत्मज्ञान करने की शक्ति, आत्मबल व आत्मबल को पहचानने व इसको व्यवहार में प्रयोग करने की शक्ति के कारण ही मनुष्यरुपी पशु को मनुष्य कहते हैं; और इस कारण मनुष्य प्राकृतिकरुप से व स्वभावरुप से अहिंसक ही है। फिर प्रश्न खड़ा होता है कि अहिंसा का पालन कैसे हो। अहिंसा का पालन करने के लिए सबसे जरूरी चीज है कि व्यक्ति में आत्मबल हो; व्यक्तियों में आत्मबलिदान करने की भावना हो/शक्ति हो; साहस हो; अपने आप को निर्दोष रखने व कष्ट सहन करने की शक्ति हो; बिना शर्त व बिना स्वार्थ के समस्त लोगों से प्रेम करने की शक्ति हो; अपने को आत्म–संयम रखने की शक्ति हो। इनके द्वारा अहिंसा का पालन बहुत सरलता से हो जाता है। सत्य की खोज, अर्थात् ईश्वर की खोज, के लिए जगत में व्यवहार करना ही ब्रह्मचर्य बताया गया है।यानी, उक्त सत्य को प्राप्त करने के लिए व्यवहार करना। अब प्रश्न है कि इस तरह का व्यवहार संभव कैसे है। इस तरह का व्यवहार संभव है, यदि व्यक्ति अपने मन को हमेशा वश में रखे। मन को वश में रख सकता है तब, जब व्यक्ति अपने शरीर को वश में रख सके। तो इस प्रकार मानव का कर्तव्य है कि वह अपने अंदर मौजूद ज्ञानेंद्रियों और कर्मेंद्रियों के दुरुपयोग को नियंत्रित रखे और सत्य/ ईश्वर की खोज में उनको लगा दे। किसी चीज में रुचि रखना,उस चीज के स्वाद में आनंद लेना व स्वाद को प्राप्त करने की इच्छा रखना आदि बातों से वंचित रखने का नियम कहलाता है अस्वाद। जितनी मात्रा में हमें अपने शरीर को बनाए रखने की जरूरत है, उतना ही खाएं–पियें, बस उससे ज्यादा खाया तो बर्बाद हो गए। प्रकृति ने हम सब को पचाने लायक बना–बनाया भोजन उपलब्ध कराया है। प्रकृति की चीज का भक्षण करना चाहिये। व्यक्तियों को वह खाना–पीना ग्रहण करना चाहिए जिससे कि अपना शरीर स्वस्थ रहे,सुरक्षित रहे, और हमेशा कर्म करने लायक रहे। खाना संतोष के साथ ही खाना चाहिए। अगर असंतोष के साथ खाना खाया, तो इसका मतलब है अस्वाद नियम का उल्लंघन। किसी चीज/वस्तु/स्थान/विचार/सम्पत्ति/धन की चोरी न करना अस्तेय नामक नीति नियम है। क्योंकि जो व्यक्ति किसी भी प्रकार की चोरी करता है या चोरी की भावना रखता है वह सत्य को पहचानने के मार्ग पर चल ही नहीं सकता है, और वह सब से प्रेम करने के अपने कर्तव्य का पालन भी नहीं कर सकता। चोरी करने के कई प्रकार होने से कभी–कभी लोग भ्रमित हो जाते हैं कि किस बात को चोरी कहें और किस को चोरी करना न कहें। गांधी ने कहा है कि किसी व्यक्ति की अनुमति प्राप्त किये बगैर अगर उस व्यक्ति की कोई चीज मिल जाती है तो उसे भी चोरी कहेंगे। चोरी तब भी कहेंगे अगरव्यक्ति कोई वस्तु यह मान कर ले कि अरे यह वस्तु तो किसी की भी नहीं। किसी वस्तु की यदि किसी व्यक्ति को आवश्यकता नहीं है और

फिर भी वह उस वस्तु को ले तो उसे भी गांधी ने चोरी कहा है। अगर किसी वस्तु को किसी व्यक्ति ने अनुमति लेकर ली लेकिन वास्तव में उस वस्तु की उसे आवश्यकता नहीं है, तब भी वह चोरी ही है। इसी प्रकार किसी के विचारों को अपना जाहिर करके भी व्यक्ति चोरी ही करता है। सबसे पहले चाहिए इस नियम की पालना करने में जो सहायक हैं वह यह हैंः कि व्यक्तियों को खुद की इच्छाओं व आवश्यकताओं को, जो कि उनके जीने के लिए जरूरी नहीं है, कम करे। व्यक्तियों के दिल–दिमाग में किसी चीज के पाने की इच्छा है, तो भी चोरी है। अगर कोई किसी दूसरे पर बुरी निगाह रखे, तो यह भी चोरी है। किसी अच्छी चीज को देखकर मन ललचाना भी चोरी ही है। अगर किसी के दिमाग में किसी चीज को भविष्य में पाने की इच्छा हो, तो ऐसा करना भी चोरी है। इसी प्रकार से सत्य के मार्ग पर चलने के लिए एक नियम और है कि कभी किसी चीज को इकट्ठा मत करो; सिर्फ अपनी मूलभूत आवश्यकता (शरीर को, दिमाग को,व भावनाओं को शुद्ध रखने के लिए जितनी चीजों की जरूरत हो) से अधिक वस्तुयें किसी के पास होना भी वस्तुओं को एकत्र न करने के गांधी के अपरिग्रह नियम का उल्लंघन है। गांधी ने कहा है कि मानव शरीर भी एक प्रकार का परिग्रह ही है क्योंकि यदि सत्य की व आत्मा की नजर से देखें तो यह भौतिक शरीर आत्मा के ऊपर की वस्तु ही है। और इस शरीर के द्वारा लोगभोग की इच्छा रखते हैं और भोग की इच्छा रखने के कारण इस शरीर को बनाये रखते हैं। अर्थात्, मानव का यह शरीर भी एकत्र की हुई चीज है। किंतु इसका उचित उपयोग प्रकृति ने निर्धारित कर रखा है। अर्थात्, इस देह को प्राकृतिक मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करके इसलिये बनाये रखें ताकि ईश्वर की मन्शा के मुताबिक इसका उपयोग सिर्फ दूसरों की सेवा करने के लिए करें। इच्छायें बहुत कम होंगी तो शरीर की जरूरत ही नहीं रहेगी, अर्थात्, शरीर को भी रखना जरूरी नहीं रहेगा। यह देह किसी दूसरे की दी हुई वस्तु है, तो इसका उपयोग भी देह को देने वाले के उद्देश्य की पूर्ति के लिये ही करना चाहिये। इस शरीर को भोग–वासना के लिए इस्तेमाल न करें, बल्कि इसका उपयोग खाते–पीते, लेटते–जागते सिर्फ दूसरों की सेवा करने के लिए करें और सब से सच्चा सुख प्राप्त करें। अभय एक नियम गांधी ने बताया है। अभय का अर्थ है कि किसी भी प्रकार से व किसी भी प्रकार का डर व्यक्ति में नहीं होना। डर कई चीजों का होता है। डर लोगों कोउनके शरीर का बहुत होता है कि हाय यह शरीर कहीं नष्ट न हो जाए। शरीर के प्रति मोह छूट जाने से बहुत से डर स्वतः ही नष्ट हो जाते हैं। डर कैसे दूर हो के लिये बड़ा सरल सा रास्ता गांधी ने बताया है कि मानव को मालिक बनकर नहीं रहना चाहिये, बल्कि दूसरों का सेवक बनकर रहना चाहिये। व्यक्ति यदि स्वयं को किसी भी महत्व का न समझे, तो अभय की स्थिति प्राप्त हो जाएगी। गांधी ने कहा अछूतपन मिटाने का नियम भी मनुष्य को पालन करना चाहिए। सत्य के मार्ग पर चलने के लिए अछूतपन मिटानेका आशय यह है कि किसी से भेदभाव नहीं रखें; ऊँच–नीच की भावना नहीं रखें। मानव समस्त जीवो से पूरा का पूरा प्रेम करने योग्य हो

जायेगा; अर्थात्, वह व्यक्ति अछूतपन मिटा देगा। गांधी ने एक नियम यह कहा कि मानव को अपने जीवन को चलाने के लिए जो भी मूलभूत जरूरत की चीज हो उसे उसको दैहिक मेहनत करके अर्जित करके पूरा करना चाहिये। बिना शारीरिक श्रम किए कोई भी चीज प्राप्त नहीं करनी चाहिये और अगर प्राप्त हो जाए तो उसका भक्षण न करें। यह नियम है शारीरिक मेहनत का।प्रत्येक व्यक्ति को यह चाहिए कि परिश्रम करे क्योंकि गांधी ने कहा है कि परिश्रम करना ईश्वर की पूजा करना है। गांधी ने यह भी कहा है कि जो व्यक्ति बिना परिश्रम किये खाता है वह पेट तो भर लेता है किंतु वास्तव में वह पाप खाता है और वह वास्तव में चोर है। बिना पुरुषार्थ किये व्यक्ति उन्नत कभी कर ही नहीं सकता है क्योंकि संस्कार होंगे वो सिर्फ थोड़े समय के लिये जबकि परिश्रम का फल दीर्घकालिक फायदे का होता है। गांधी ने कहा सत्य के मार्ग पर चलने के लिए सभी मनुष्य के लिए बाध्यता है कि उनके अंदर अहंकार नाश हो जाये, उसका जड़ से नाश हो जाये। सबकी सेवा करें और उसकी सेवा में अपना सब कुछ त्याग दें यह नम्रता नामक नियम है। गांधी ने यह भी कहा की सारे स्थूल, यानी कि शारीरिक सांसारिक संबंधों, से छुटकारा होना स्वदेशी नियम है। इस दशा में मानव का अपना शरीर भी उसके लिए दूसरों का होता है और ऐसा व्यक्ति दूसरों के लिए अपने शरीर को भी छोड़ देता है। गांधी ने कहा है कि हर व्यक्ति को सभी धर्मों का आदर करना चाहिए। इसको, नीति नियम को, गांधी ने सर्वधर्म–समभाव नाम दिया है। ऐसा गांधी ने इसलिए कहा है क्योंकि किसी ने पूर्ण सत्य को देखा नहीं है, तो इसलिए सभी धर्म वाले सत्य की ओर बढ़ रहे हैं; दूसरे जितने भी धर्म है सब बनाए तो मनुष्य ने ही हैं और मनुष्य दूसरों का बनाया हुआ है, यानी सत्य/ईश्वर द्वारा, तो मनुष्य ने जिस चीज को देखा नहीं है उसको मनुष्य बना नहीं सकता है। तो जब वह मनुष्य,जिसने सत्य को देखा ही नहीं है, स्वयं मेंअपूर्ण है। तो मनुष्य के द्वारा बनाए गए नियम में भी अपूर्णता है। अगर मनुष्य के द्वारा संसार में प्रचलित धर्मों को हम अपूर्ण मान लें तो इसका मतलब हुआ कि अच्छे बुरे और ऊँचे–नीचे का भेदभाव का खत्म होना। इस दशा में समस्त मानव का धर्म है कि सब धर्मों को सच्चा समझे; सभी धर्मों को अपूर्ण समझे; सभी धर्मों में कुछ न कुछ दोष हो सकने की संभावना रखे; और जब हम ऐसा करते हैं तो अपने धर्म में दूसरों के धर्म में शामिल अच्छी चीजों को अपने धर्म में शामिल करते रहे। दूसरों की गलती की वजह से हमें कभी किसी को दुःख नहीं देना है; खुद ही दुख उठाना चाहिए; इस नियम के पालन से सारे संकटों को दूर किया जा सकता है। सर्वधर्मसमभाव के बारे में गांधी ने कहा है कि विवेकवान मानव को चाहिए कि दुनिया भर के धर्मों के बारे में आलोचनायें न करके सबसे पहले उसका स्वयं का जो धर्म है उसका पालन शुरु कर दें।

गांधी ने कहा कि शिक्षा ऐसी हो जिससे बचपन से ही बच्चों की अंदरूनी शक्तियों को विकास किए जाने कि सर्वोचित दिशा मिले। इस बात के लिये उन्होंने खेती आदि कामों का उदाहरण

दिया है।उन का कहना है कि ऐसे कामों से शारीरिक श्रम होता है और वह शारीरिक श्रम उपयोगी होता है और उससे उनको जीवकोपार्जन मिलता है। वह बेरोजगार नहीं रहते। साथ–ही–साथ इस प्रकार के शारीरिक श्रम,यानी उद्योग से उनका शरीर स्वस्थ रहता है। साथ ही बुद्धि भी बढ़ती है और इस प्रकार से काम करते हुए वह रोज कुछ न कुछ गणित शास्त्र और दूसरे शास्त्रों का ज्ञान अर्जित करते रहते हैं। इतना ही नहीं, विद्यार्थियों को मनोरंजन के लिए उचित साहित्य आदि विषय की भी जानकारी होती रहती है। इस प्रकार से देखें तो गांधी ने अपने विचारों में प्रकृतिवाद, आदर्शवाद, प्रयोजनवाद, यथार्थवाद तथा अस्तित्ववाद के शैक्षिक उद्देश्यों को अपने शैक्षिक विचारों में शामिल किया। गांधी ने कहा कि पूरे विश्व के बच्चों को जरूरत है कि उनके अंदर विद्यमान शक्तियां विकसित हो; बच्चे अपने स्थानीय वातावरण संसाधन, भौगोलिक ज्ञान, इतिहास विज्ञान को समझें और उनके साथ समायोजन करना सीखें; अपने जीवन के लिए अर्थ, अर्थात्, धन कमाना सीखें किंतु साथ में बिना किसी को क्षति पहुँचाए। इस प्रकार बच्चे अपने पूर्वजों के कमाए हुए ज्ञान अर्जित की हुई संस्कृति और बनाई हुई सत्यता को समझ सकेंगे,उसका संरक्षण कर सकेंगे और उसमें संवर्धन कर सकेंगे। बच्चों को ऐसी शिक्षा की जरूरत होती है जिससे वह प्रकृति के बनाने वाले; प्रकृति को चलाने वाले; प्रकृति में विद्यमान समस्त जीव निर्जीव को और मानव जीवन की विशिष्टताओं को समझ सके, उनके प्रति उन्हें आदर उत्पन्न हो सके तथा बच्चे प्रकृति के नियमों पर चलें। इस प्रकार की शिक्षा से बच्चे मनुष्य के जीवन के अर्थ को और उद्देश्य को समझ सकेंगे और उनको प्राप्त करने के लिए ही जीना सीख सकेंगे। इस प्रकार की शिक्षा पाए हुए बच्चे जब बड़े होते हैं तो दूसरों से प्रेम पूर्वक व्यवहार करते हैं, दूसरों को अपना ही समझते हैं और दूसरों को कभी नुकसान नहीं पहुँचाते। इस प्रकार की शिक्षा से बच्चों में मोहनहीं होगा और वह लौकिक वस्तुओं को त्याग करना सीख सकेंगे। गांधी चाहते थे कि शिक्षा ऐसी हो कि बच्चों में बौद्धिक, शारीरिक, आध्यात्मिक, और नैतिक सभी प्रकार के विकास हो और वह भी समग्र संतुलित तथा सर्वोत्तम हो। बौद्धिक विकास के अंतर्गत किसी विशिष्ट विषय की विद्वता ही नहीं समझते थे, बल्कि बौद्धिक विकास में बच्चों में विश्लेषण शक्ति होना, उनमें विवेक शक्ति होना और उन्हें स्मरण शक्ति होना मानते थे। शारीरिक विकास में सिर्फ व्यायाम ही शामिल नहीं था। गांधी का मानना था कि शरीर को पवित्र, स्वच्छ और सुंदर रखना सिखाया जाए और उस शरीर से परिश्रम कराया जाए जिससे बच्चे कोई उद्यम सीखें और धन कमाना सीखें और बड़े होने पर बेरोजगार न रहें। नैतिक विकास से उनका आशय था कि सद्विचार, सदाचार और सद्व्यवहार से बच्चे अपने चरित्र का निर्माण कर सके। आध्यात्मिक विकास के अंदर वह चाहते थे कि बच्चे सृष्टि के समस्त तत्वों का ज्ञान कर सकने में सक्षम हों और सत्य, ईश्वर, मानव जीवन, दूसरे जीव–निर्जीव के जीवन और सृष्टि को समझते हुए मानव आत्मा को परमात्मा से मिलाने की साधना सीखे। इस प्रकार से बच्चों में बौद्धिक क्षमता जागेगी, उनमें सत्यनिष्ठा उत्पन्न होगी,

बच्चे श्रमशील होंगे, बच्चों को अपने शरीर को बनाए रखने का ज्ञान–विज्ञान मिलेगा, बच्चे सृष्टि के तत्व ज्ञानी होंगे, बच्चे आध्यात्मिक साधना में लगे रहेंगे, बच्चों का स्वभाव सात्विक होगा और वो सभी चरित्र के गुण से संपन्न होंगे। गांधी का कहना था कि यह सब मानव मूल्य बातों से विकसित नहीं किए जा सकते हैं और न ही इनको कानून बनाकर के लोगों में उत्पन्न किया जा सकता है। इन मूल्यों का विकास का सबसे अच्छा काल है, बच्चों को 6 वर्ष से 17 वर्ष तक की आयु में शिक्षा इन मूल्यों को ग्रहण करने की दी जाए क्योंकि जो मानव मूल्य इस आयु में प्राप्त हो जाते हैं वही जीवनभर रहते हैं और यदि इन मूल्यों को इस आयु अवस्था अवधि में ग्रहण नहीं किया गया, तो प्रौढ़ अवस्था में इनका ग्रहण करना बहुत मुश्किल होता है। गांधी का मानना था कि मनुष्यता प्राप्त करने के लिए किसी अक्षर ज्ञान की जरूरत नहीं होती है, जरूरत होती है बच्चों को नीति की शिक्षा पाने की। मानवता को बनाए रखने की क्षमता जब बच्चों में हो जाए तब बच्चों को किताबी ज्ञान देना शुरू करना चाहिए और तब वो उस ज्ञान को अच्छी तरह ग्रहण कर सकते हैं क्योंकि सबसे पहली जरूरत है कि उनके अंदर शारीरिक,बौद्धिक, आध्यात्मिक तथा नैतिक विकास किये जाने की।

इस प्रकार, गांधी के अनुसार सभी को सार्वकालिक व सर्वव्यापक नीति शिक्षा देना चाहिये। नीति शिक्षा के अन्तर्गत जिन नीति व नीतियों की शिक्षा देनी होती हैं उनका वर्णन ऊपर किया गया है। नीति शिक्षा के अन्तर्गत ऐसी शिक्षा देना जो मनुष्य योनि में जन्म लेने के कारण व मनुष्य होने के नाते बच्चों व बड़ों का पहला कत्वर्य/धर्म है। ऐसी नीति शिक्षा के पहले अक्षर–ज्ञान व किसी भी प्रकार के विज्ञानों व टेक्नोलॉजी की शिक्षा तथा अन्य किसी प्रकार की शिक्षा दिया जाना मानव हित में नहीं, और इस कारण से कदापि नहीं दी जानी चाहिये।

मानव जन्म के प्रारम्भ की अवस्था में (विशेषतौर से बचपन की अवस्था, किन्तु निश्चित ही वयस्क बनने के पूर्व की अवस्था में) सबसे अधिक और बहुत कुछ, यानी लगभग सब कुछ, सीखा जा सकता है। औरबच्चे में एक लम्बे काल तक, या कहें जीवन भर तक भी, बना रहता है। जन्म से ही बच्चों की परवरिश दूसरों द्वारा किये जाने के कारण बच्चों पर माता–पिता, संरक्षक, साथियों आदि व अन्य वातावरण का असर बहुत अधिक पड़ता है। चूँकि मानव बनने की आधारशिला बनाने का कार्य सर्वप्रथम व सबसे जरुरी है; अर्थात्, बच्चा सृष्टि का पशुरुपी जीव बने रहने, पशुत्व के गुणों के बीजों को बनाये रखने, व पाशविकता वृत्ति की सम्भावना बनाये रखने के बजाय बच्चों में उन गुणों को बनाना जिनके कारण पशुरुप में जन्म लेने व इस कारण अनूठी बौद्धिक शक्ति, चित्त शक्ति, मन, हृदय (आत्मतत्व तथा दया, सहानुभूति, प्रेम व त्याग आदि गुणों का स्त्रोत), आत्मबोध/आत्मज्ञान करने की शक्ति, सृष्टि/सत्य/नीति को समझने की शक्ति व उसके अनुसार चलने की शक्ति से प्राकृतिकरूप से सम्पन्न होने के आधार पर मानव बन सकें। इसलिये बचपन में नीति शिक्षा देना, बाकी सारे प्रकार की शिक्षाओं

की शुरुआत करने के पूर्व, बहुत ही आवश्यक है।इसलिये नीति शिक्षा दिये जाने का सर्वोत्तम काल उक्त प्रारंभिक अवस्था ही है।

इस प्रकार शोधिका ने निष्कर्षस्वरुप यह पाया कि नीति शिक्षा का अर्थ हुआ सार्वकालिक व सर्वव्यापक नीति/सत्य / सृष्टि की सत्ता को मानना व उसका आदर करने की व नीति नियम की पालना करना की सीख देना या उनके पालना को सिखाना या उनके पालना की शिक्षा देना और नीति नियम की पालना में अभ्यस्त बनाना। ऐसी शिक्षा देने से बच्चों में अन्दर छिपी तथा अनुभव की जा सकने वाली बौद्धिक, आध्यात्मिक, नैतिक शक्तियों तथा शारीरिक शक्ति का एक साथ, सभी को बराबर प्राथमिकता देते हुए, सन्तुलितरूप से, सबसे उत्तमरुप से जाग्रत करना व विकसित करना सम्भव होता है और इस प्रकार उनको मानव हेतु अनिवार्यरुपी आवश्यक वास्तविक/सर्वप्रथम/ सर्वोत्कृष्ट शिक्षा देना चाहिये। इस प्रकार की शिक्षा प्राप्ति के बाद बच्चों में उक्त सभी गुण व विशेषतायें अन्दर तक इस तरह समा जाती हैं कि फिर बाद के जीवन में कैसी भी विषम से विषम स्थिति आये उन सब पर वो आसानी से विजय पा लेते हैं और साथ ही उनके अन्दर बचपन में डाले गये मानव मूल्यों में कोई कमी नहीं आने देते हैं। इसी प्रकार बड़े होने पर वो किसी भी प्रकार की विशिष्ट शिक्षा पाकर किसी भी प्रकार का काम करे (चाहे वैज्ञानिक बनें या टेक्नोलॉजिस्ट बनें या व्यवसायी बनें या नौकरी करें या मजदूरी करें या वकील बनें या डॉक्टर बनें आदि), वो उन कामों को नीति व नीति नियमों की पालना करते हुए ही करते हैं, नीति व नीति नियमों की पालना में अडिग रहते हैं, और साथ ही उनके अन्दर बचपन में डाले गये मानव मूल्यों में कोई कमी नहीं आने देते हैं। ये मानव मूल्य, गुण व विशेषतायें वो ही हैं जिनको गांधी के नीति व नीति नियम के सन्दर्भ में ऊपर व्यक्त किया गया है– उदाहरण बतौर, अपने समस्त प्रकार के कार्यों के करने का ध्येय मानव सेवा करना होना; अपनी इंद्रियों पर संयम रखना; उपयोगितावादी नहीं होना; मन को वश में रखने वाला होना; आत्मबोध करने वाला होना; आत्मबल रखने वाला होना; आत्मबलिदान करने वाला होना; सबसे प्रेम करने वाला होना; अधिकारोन्मुखी नहीं होना; साहसी व कष्टसहनशील होना; कर्त्वयोन्मुखी होना; 'मैं–पन'/'मेरा–पन' आदि अहम की बिल्कुल भावना नहीं होना; सुखी, संतोषी व शांत स्वभाव का, उदार, दयावान व निःस्वार्थी होना; इच्छायें बिल्कुल कम होना; शारीरिक भोग की इच्छा नहीं करना; ईष्या, द्वेष, भय, क्रोध, लालच, मोह व शत्रुता आदि दुर्गुणयुक्त नहीं होना; स्वयं को विषय मार्गों से दूर रखकर अपने शरीर, मन, बुद्धि और प्राण की देखभाल करने वाला होना; किसी से नाजायज फायदा नहीं उठाना; चरित्रवान, मर्यादित व संयमी होना आदि।

यह साफ–साफ पाया गया है कि गांधी संसार का अस्तित्व धर्म पर आधारित मानते थे। धर्म शिक्षा के गांधी विरोधी नहीं थे। किंतु वह विरोधी थे उस प्रकार की धर्म शिक्षा के जिसे मुल्ले, दस्तूर कहे जाने वाले पारसी जाति के पुरोहित, और ब्राह्मण आदि स्वयं को धर्म का जानने/

पालन/ व्यवहार करने में प्रवीण, पालक व अनुदेशक प्रकाशित करके स्वयं के स्वार्थ पूर्ति हेतु धर्म में आस्था रखने वाले,किन्तु धर्म के प्रति कम ज्ञान रखने वाले, लोगों को भ्रमित करके झूठे आडंबरपूर्ण कार्यों तथा निरर्थक कुरीतियों का पालन करवाते थे। गांधी ने उक्त तरह के धर्मोपदेशकों को गंदगी फैलाने वाले और गलत राह पर ले जाने वाला कहा। इस स्थित में गांधी का मत था कि उक्त प्रकार के स्वयं को धर्म के प्रकांड पंडित मानने वालों को धर्म के वास्तविक ज्ञाता व विद्वानों द्वारा समझाया जाना चाहिए कि उक्त पाखंडी लोगों को ऐसे कार्य करने की बुद्धि देनी चाहिए; कि वह अपने पाखंड, आडंबर और निरर्थक कार्यों को करवाने से बाज आयें और लोगों को धर्म में समाई वास्तविक कर्म करने व ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रेरित करें। क्योंकि लोगों को बहुत समय से ऐसे पाखंडियों पर विश्वास जम चुका था। गांधी ने सिर्फ इसी विकल्प पर आश्रित न रहते हुए, धर्म के वास्तविक जानकार लोगों को यह प्रयत्न करने के लिए आवाहन किया कि सभी धर्मों के लोगों को उनसे संबंधित धर्मों में समाहित सत्य व सत्य के अनुसरण में कर्तव्य/कर्म करने हेतु; अर्थात्, नीति व नीति नियम पथ गमन हेतु; को शिक्षित करें। क्योंकि गांधी अच्छी तरह जानते और मानते थे कि संसार के सभी धर्मों में नीति, सत्य व्यक्त है, अतः सब के लिए नीति का जानना और मानना सबसे पहला धर्म व कर्म है। गांधी यह भी मानते थे कि पूरे संसार में जितने भी धर्म विद्यमान हैं, वे सभी संसार के व्यक्तियों ने अपने विवेक से उन्हें अच्छा समझते हुए बनाये हैं और सारे व्यक्ति व इनका ज्ञान दोनों अपूर्ण हैं। चूँकिसभी व्यक्ति पूर्ण सत्य से अनभिज्ञ हैं, इसलिए उन धर्मों में कुछ कमी–वेशी हो सकने की संभावना है। फिर भी लोग अपने–अपने धर्म को ऊँचा और दूसरों के धर्मों की आलोचनाएं करते रहते हैं। कभी–कभी तो इस कारण हिंसा भी करने लगते हैं, जोकि सरासर गलत है और रोक लगाए जाने की माँग करती है। इन तथ्यों की दृष्टि से इंसान और इंसान के बीच संघर्ष की स्थिति न होने देने तथा भाईचारा स्थापित करने की दृष्टि से गांधीजी ने सबसे कहा कि व्यक्ति को अपने धर्म सहित संसार के बाकी सभी धर्मों को अपूर्ण मानते हुए उनमें संशोधन करने की भावना रखते हुए सभी धर्मों को समान भाव से देखें, व उनका आदर करें। वक्त की माँग को देखते हुए ही गांधी ने लोगों को सत्य नीति व नीति–नियमों की रचना करके सबको अवगत कराया, विशेष तौर पर अपने आश्रम में रहने वालों को उन नीति व नीति नियमों की शिक्षा देकर पालना करने के लिए कह कर।

शोधिका ने इस शोध–प्रश्न 2 का सकारात्मक निष्कर्षरूप यह उत्तर पाया कि नीति शिक्षा धर्म का पर्याय है, जिसे गांधी जी ने धर्मनीति व नीतिधर्म भी कहा है; किंतु स्पष्ट रुप से गांधी के अनुसार नीति शिक्षा किसी भी सांप्रदायिक धर्म की शिक्षा का पर्याय नहीं है।

आतंकवाद ऐसी स्थिति है जिसमें हिंसा के द्वारा लोगों के जान–माल को क्षति पहुँचाई जाती है, या ऐसी क्षति पहुँचाए जाने का डर पैदा किया जाता है, या ऐसी क्षति पहुँचाए जाने की धमकी

दी जाती है। यह कार्य व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह या राष्ट्र या राष्ट्र के समूहों द्वारा किया जाता है। अर्थ(धन) व राजनीतिक/(सत्ता की प्राप्ति) फायदों को प्राप्त करने के लिए तथा अपने धर्म को दूसरों के धर्म से ऊपर ठहराने के लिए ऐसे कार्य किए जाते हैं। ऐसा कार्य स्वयं की इच्छा से या दूसरों के कार्यों के विरोध स्वरूप किए जाते हैं। इसी प्रकार व्यक्ति या समूह द्वारा दूसरे व्यक्ति या समूहों के ऊपर जान–माल की क्षति पहुँचाने के लिए हिंसा की जाती है।

नीति व नीति नियम की शिक्षा आतंकवादी व गैर आतंकवादी हिंसा को खत्म करने व उस पर काबू पाने तथा भविष्य में भी उनको नहीं उत्पन्न होने देने का सबसे अच्छा सरल व सबसे ज्यादा कारगर उपाय है। नीति नियम में पहला नियम है, अहिंसा का। अहिंसा का आशय है, हिंसा नहीं।इस प्रकार नीति शिक्षा के अंतर्गत सिखाया जाने वाला प्रथम नीति नियम या आचरण ही अकेले उत्तर है कि नीति नियम हिंसा व आतंकवाद पर काबू पा सकेगी। अहिंसा नामक प्रथम नीति नियम की शिक्षा से बच्चे व बड़े यह सीखते, समझते व ऐसी सीख को व्यवहार में प्रयोग करते हैं कि बिना किसी भेदभाव के सभी से प्रेम करना व प्रेम करते रहना, भले ही स्वयं की धन–संपदा को, स्वयं के प्रियजन को व स्वयं के शारीरिक अस्तित्व को अपने से शत्रुता रखने वाले मिटा दें; भले ही इन सब चीजों को हमला करके हरण करने वालाव्यक्ति खुद बुरा क्यों न हो;तथा भले ही इन सब चीजों का हरण करने वाला भूतकाल से उसका शत्रु क्यों न रहा हो। अर्थात्, सर्वव्यापी और सार्वकालिक प्रेम करता है, वह व्यक्ति जो नीति व नीति नियम की अनुपालना करने के लिये शिक्षित किया गया है और अभ्यस्त किया गया है। अहिंसा का व्यवहार करना सीखा बच्चा व व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों की बात तो दूर की है सृष्टि में विद्यमान सारे जीव–निर्जीव को अपने समान मानते हुए उन सबको स्वयं के उत्पन्न करने वाले से उत्पन्न अपना भाई–बहन मानते हुए उनको कभी मारेगा नहीं,उनको कभी काटेगा नहीं,क्षति पहुँचाएगा नहीं उनको, उन सभी के प्रति उनके अहितकारी विचार उत्पन्न नहीं होने देता है, उन सभी के प्रति अपने अंदर कभी द्वेष–इर्षा–घृणा आदि उत्पन्न नहीं होने देता है। अहिंसा नीति नियम की शिक्षा देकर बच्चों व व्यक्तियों को इन व्यवहारों को करने का अभ्यस्त बना दिया जाता है कि वो कभी झूठ न बोलें, अपने शरीर को सही दिशा में रखकर उसका प्रयोग दूसरों की सेवा करने व दूसरों के कष्ट दूर करने के लिए करें। नीति शिक्षा प्राप्त किया व्यक्ति, अर्थात्, नीति नियम के अनुसार दैनिक रूप में दूसरे जीव–निर्जीव से व्यवहार करने वाला व्यक्ति, अपने शरीर के अंदर विद्यमान अदृश्य बल, यानी आत्मबल, को पहचानता है; उस आत्मबल को शारीरिक बल,यानी पशु बल, से अनंत गुना अधिक शक्तिशाली मांनता है; और इस आत्मबल से वह स्वयं की रक्षा करता है और दूसरों की रक्षा करता है।ऐसा वह उस स्थिति में भी करता है जब कोई दूसरा उसके प्रति हिंसा करके,ईष्या–द्वेष–घृणा शत्रुताभाव रखकर उसको शारीरिक रूप से या अन्य किसी रुप में क्षति पहुँचाता है या नष्ट करता है। अर्थात्, नीति शिक्षा प्राप्त व्यक्ति हिंसक के प्रति हिंसक न होते हुए, बिना उग्र हुए, हमला/नष्ट करने वाले से प्रेम रखते

हुए, स्वयं का सर्वस्व न्योछावर कर देता है व आत्म बलिदान कर देता है। वह व्यक्ति कभी उसके अंदर विद्यमान शांति, संयम, दया, करुणा, क्षमा व साहस के गुणों को असीम विपरीत परिस्थितियों में भी बनाए रखता है। ऐसा करने में वह व्यक्ति इसलिए सक्षम व सफल होता है क्योंकि नीति नियम की शिक्षा पाकर वह अभ्यस्त हो चुका होता हैः– स्वयं के मन की चंचलता पर नियंत्रण रखने का; स्वयं की इंद्रियों की चंचलता को काबू में रखने का; स्वयं को इंद्रियों के विषयों में भोगने से स्वयं को दूर रखने का; स्वयं के विवेक यानी न्याय–बुद्धि का उपयोग करने का; स्वयं की आवश्यकताओं व चाह को हमेशा ही बिल्कुल कम रखने का; धन–संपदा आदि के प्रति विमोह रखने का; स्वयं पर काम, क्रोध का असर न होने देने का; कभी भी किसी सांसारिक वस्तुओं का जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं (हवा, पानी, सादा भोजन) से अधिक एकत्र नहीं करने का; कभी भी किसी की वस्तु व विचारों की चोरी नहीं करने का; कभी भी दूसरे की आज्ञा के/बिना आज्ञा के/ उस दूसरे की जानकारी के या बिना जानकारी के उस दूसरे की वस्तुओं को प्राप्त नहीं करने का; कभी भी किसी वस्तु का रस/मजा लेकर नहीं खाने–पीने का; कभी भी किसी से डर नहीं रखने का; भले ही किसी स्थित में उसके शरीर सहित सब कुछ खत्म किए जाने का कोई प्रयत्न कर रहा हो आदि,के पालन करने का अभ्यस्त होना। ऐसा व्यक्ति हमेशा आत्मबल का प्रयोग करने का; हमेशा दूसरों से नम्रता से व्यवहार व बोलचाल करने का; तथा हमेशा ही उन चीजों से /उस धन से अपने जीवनयापन की मूलभूत आवश्यकताएं (हवा, पानी, शरीर के लिए आवश्यक आहार) की पूर्ति करने का जो कि उसने स्वयं शारीरिक उद्यम करके कमाई हों, का आदि होता है। अतः इस बात को निःसन्देह शोधिका ने पाया है कि नीति शिक्षा/नैतिक शिक्षा की सीख लिया हुआ व्यक्ति व बालक; अर्थात्, नीति को मानने वाला तथा नीति नियमों के अनुसार हमेशा व्यवहार करने वाला बच्चा व व्यक्ति कभी भी हिंसानहीं करेगा; आत्म बल से निडरतापूर्वक,साहसपूर्वक हिंसा के प्रति भी आत्मबलिदान करने को सहर्ष तैयार रहेगा; कभी ऐसा व्यवहार नहीं करेगा जिससे दूसरों में हिंसा करने का विचार उत्पन्न होतथा प्रयत्न करे, बल्कि उसका व्यवहार हिंसात्मक व्यवहार करने वाले की शक्ति, स्वयं काअहिंसात्मक व्यवहार होने के कारण,स्वमेव प्राकृतिकरूप से कम करने व हिसंक को शांत करने और उस हिंसक कोअपनी बात मनवाने में सक्षम होगा और लड़ाई–भिड़ाई की स्थिति समाप्त करने में सक्षम होगा।

अतः शोधिका ने उपरोक्त शोध–प्रश्न 8 का निष्कर्षस्वरूप यह उत्तर पाया है कि 'नीति शिक्षा आतंकवाद व हिंसा पर काबू पा सकेगी'।

नीति शिक्षा के विषय, नीति व नीति नियम (जिनका ऊपर उल्लेख है), के भ्रष्टाचार के सन्दर्भ में निम्न प्रभाव ज्ञातव्य हैं :–अहिंसा नामक नीति नियम का जहाँपालन होगा; जहाँ अस्तेय नियम के पालक होंगे; परिग्रह जहाँ लोग नहीं करेंगे; जिस स्थिति में लोग सिर्फ उतना ही खायेंगे–पियेंगे,

जितना कि प्राकृतिक रूप में शरीर को रखने के लिए जरूरी होगा;जहाँ लोगों में यह धारणा होगी कि सिर्फ उस कमाए हुए धन/वस्तु से अपना जीवनयापन करेंगे, जो उन्हें अपने शरीर से श्रम करके मिलता है;जहाँ लोगों की भौतिक वस्तुओं को प्राप्त करने में रुचि ही नहीं होगी;जहाँ लोगों में लोभनहीं होगा; जहाँ लोगों की आवश्यकतायें नगण्य होंगी; और जहाँ लोग अपना सब कुछ त्याग करके मानव की सेवा करने के अपने मानव–सेवा धर्म को निभाने में व्यस्त होंगे,निःसंदेह वहाँ पर /उस स्थिति में भ्रष्टाचार होना कल्पनातीत होगा।इन उदाहरणस्वरुप बातों को समाहित गांधी के विचारों की नीति, नीतिनियमोंऔर नीति शिक्षा, जिनसे संबंधित विवेचन व निष्कर्ष इसी शोध प्रबंध में शोध–प्रश्न 1 व 3 के संदर्भ में पहले किया गया है, के दृष्टिगत *शोधिका ने (शोध–प्रश्न 7 के सम्बन्ध में) यह पाया है कि नीति शिक्षा निश्चित ही भ्रष्टाचार पर काबू पा सकेगी। नीति शिक्षा के दिए जाने से भ्रष्टाचार की समस्या उत्पन्न ही नहीं होगी, और साथ में, यदि भ्रष्टाचार है भी, तो वो भी समाप्त होगा।*

जी.एन.एच., अर्थात् ग्रॉस नेशनल हैप्पीनेस, अर्थात् सकल राष्ट्रीय खुशहाली की संकल्पना के अंतर्गत उन व्यक्तियों और उनसे बने देशको भी खुशहाल समझा जाता है, जिनके पास ऐशो–आराम की वस्तुएं हों; घर व धन की अधिक संपत्ति हो; अधिक से अधिक आमदनी हो; और गैर–प्राकृतिक/दिखावे का/परिहार्य रहन–सहन स्तर हो। किंतु ये समस्त बातें गांधी की दृष्टि के उपरोक्त नीति, नीति नियमोंव नीति शिक्षा के अंतर्गत त्याज्य हैं– क्योंकिगांधी के नीति, नीति नियम व नीति शिक्षाके अनुसार सबसे बड़ा सुख, खुशहाली, गुण व कर्त्वय तो नीति/सत्य के आग्रह के पथ पर प्रगति करते हुए मानव–सेवा करना है। गांधी के नीति, नीति नियम व नीति शिक्षाके अन्तर्गत तो व्यक्ति स्वयं के शरीर को भी एकत्र वस्तु मानते हैं, जिसको अपरिग्रह नीति नियम के अनुसार उसे भी वक्त पर दे देना फर्ज समझता हैं जिसने इसे दिया, और देने वाले ने अपने जिन अंशो के (सृष्टि के जीव–निर्जीव के) उपभोग कराने के लिये मानव शरीर दिया है उसे उन अंशो को उपभोग करने देता है। और भी, जी.एन.एच.के अन्तर्गत उन व्यक्तियों को भी खुश मान लिया जाता है, जोन तो शांत स्वभाव के हों; न दयावान हों; क्षमाशील नहीं हों; संतोषी व उदार नहीं हों; स्वार्थी हों;ईष्या, क्रोध, हिंसा, चोरी करने वाले हों;झूठ बोलने वाले हों, डरने वाले हों, और शारीरिक मेहनत से कमा कर पालन–पोषण नहीं करने वाले हों। स्पष्टतः, ऐसे गुण गांधी के उपरोक्त नीति, नीति नियम व नीति शिक्षाके अन्तर्गत निन्दनीय, अवाँछित व निषिद्ध हैं। निश्चित ही ऐसे लोगों से बना जी.एन.एच. गांधी के विचारों के नीति, नीति नियम व नीति शिक्षाकी दृष्टि से खुशहाल नहीं कहा जा सकता है।*अतः शोधिका ने यह पाया है कि नीति शिक्षा सकल राष्ट्रीय खुशहाली (जी.एन.एच.) का पर्याय नहीं है।*

'नीति शिक्षा'', ऊपर वर्णित,किन अमुक लोगों को किस अमुक आयुकाल में दी जानी चाहिये के प्रश्न के विषय में प्रत्यक्ष और स्पष्टरूप से 'हिन्द–स्वराज' में कुछ उल्लेख नहीं है और 'मंगल–प्रभात' में भी कुछ उल्लेख नहीं है। गांधी के शिक्षा पर विचार सम्बन्धी अन्य साहित्य में भी प्रत्यक्ष और स्पष्टरूप से उल्लेख नहीं है। इसी शोध प्रबन्ध में विवेचन व निष्कर्ष के अनुसार यह स्पष्ट है कि दोनों, शिक्षा व नीति शिक्षा, के सम्बन्धी विचार बच्चों के सन्दर्भ में व्यक्त किये गये हैं जिससे बच्चे बचपन से ही मानव के धर्म व कर्म निभाना सीखना प्रारम्भ कर व अभ्यस्त होकर बड़े बनकर पूर्ण मानव बनें। इसका आशय यह बिल्कुल नहीं है कि नीति शिक्षा सिर्फ बच्चों को ही दी जा सकती है। नीति शिक्षा बड़ों को भी दी जा सकती है। नीति शिक्षा का अर्थ हैः– प्रत्येक बच्चे, किशोर व प्रौढ़ को नीति को समझाना तथा नीति नियमों का पालन करना सिखाना। व्यक्ति का मानव योनि में जन्म लेने के कारण उसका जन्म से ही कर्त्वय है कि ईश्वरीय/सच्चा/प्रकृति द्वारा दिया गया धर्म/कत्वर्य, यानी नीति नियम का पालन करना, निभाना अनिवार्य है, उसकी बाध्यता है, उसका कत्वर्य है, उसका धर्म है; इस बात का कोई प्रतिस्थापन नहीं है। विशेषरूप से बच्चों को अवश्यरूपेण नीति शिक्षा दिये जाने का आशय सिर्फ इसलिये है कि बचपन में दिमाग कोमल व लचीला होता है, बच्चों की याददास्त ज्यादा होती है और उनकी विचारों को ग्रहण करने व देर तक बनाये रखने की शक्ति बहुत अधिक होती है, और इसलिये मानव–जीवन की बचपन की अवस्था बच्चों में जीवनभर रह सकने वाली अच्छी–अच्छी आदतें बनाया जा सकने के लिये सबसे अधिक उपयुक्त होती है, और यह कोई नई बात नहीं है बल्कि प्राचीन समय से अभी तक इस बात को सच माना जाता रहा है। इस कारण से बच्चों को यदि बाल्य–अवस्था से ही सत्य/ नीति तथा अहिंसा आदि नीति नियमों की शिक्षा दी जाती है तो बच्चों में उन नीति नियमों की पालना की आदत आसानी से डाली जा सकती है और इस बात की सुनिश्चितता हो सकती है कि बच्चे बड़े होने पर मानवधर्म निभाने में चूक नहीं करेंगे। *परिणामतः शोधिका का निष्कर्ष यह हैकि नीति व नीति नियमों की शिक्षा, अर्थात् नीति शिक्षा, बच्चों तथा बड़ों दोनों को उनकी किसी भी आयु अवधि में दी जा सकती है, लेकिन इसके स्वाभविक व अपेक्षित परिणामों को सुनिश्चित तरह से प्राप्त करने के उद्देश्य के हित में उक्त नीति शिक्षा मनुष्य–बाल्यावस्था से दिया जाना सर्वोचित है।*

प्रश्न, किस आयुकाल में किस प्रकृति की शिक्षा दी जानी चाहिये, के सम्बन्ध में *यह पाया गया* किआजकल पाठ्यक्रम आधारित व कक्षा आधारित शिक्षा चल रही है, किन्तु नीति शिक्षा इस तरह की नहीं है। कारण यह हैं कि नीति स्पष्ट है, अर्थात् सृष्टि सत्य है, और अदृश्य शक्ति/सृष्टि परिचालक, जिसे ईश्वर आदि अनेक नामों से लोग पुकारते चले आ रहे हैं, द्वारा किन्हीं नियमों के द्वारा सृष्टि का परिचालन भी सत्य है, और वे नियम, अर्थात् नीति नियम भी स्पष्ट हैं। उक्त नीति और नीति नियम सभी काल व सभी जगह के लिये हैं। उक्त नीति नियम,

न्याय, प्रेम, सेवा, त्याग, दया, आत्मबलिदान, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, नम्रता आदि के अर्थ भी स्पष्ट हैं, जिन्हें इसी शोध प्रबन्ध में व्यक्त किया गया है।

मानव के जीवन की हर उम्र के हरक्षण में उक्त नीति व नीति नियम की पालना की जा सकती है, तथा उनके सम्बन्ध में प्रयोग किये जा सकते हैं। उक्त नीति व नीति नियम की पालना करने में गल्ती होना, भूल होना व गलतफहमी होना स्वाभाविक है क्योंकि ये सृष्टि के, सृष्टि के बनाये नियम बहुत गूढ़ हैं; फिर भी इसका अर्थ यह नहीं है कि उनकी पालना करना छोड़ दें, बल्कि इस स्थिति में मानव का फर्ज यह है कि वो जहाँ पर भूल हुई वहीं से फिर सत्याग्रह, मतलब सत्य प्राप्ति की ओर चलना जारी रखे, व नियम पालना शुरू कर दे। यह बहुत साफ–साफ समझ लेना जरूरी है कि उक्त नीति नियम की पालना मात्र चर्चाओं से नहीं होती है, उक्त नीति नियम की पालना उन नीति नियम के अनुसार लगातार चलने/कर्म करने से होती है, पालना करने के अभ्यास करते–करते उन नीति नियम के अनुसार लगातार चलने की आदत का प्रयोग मृत्यु तक जारी रखा जाता है। इसलिये प्रत्येक व्यक्ति का यह फर्ज है कि स्वयं ही अपने किये–धिये के बारे में प्रत्येक दिन यह टटोलता रहना चाहिये कि उस दिन उसने जो–जो काम किये थे क्या उनमें से किसमें उससे अहिंसा के पालन में चूक हुई, या विनम्रता बरतने में गल्ती हुई; ऐसे प्रश्न सभी नीति नियम के बारे में करना चाहिये।

प्रश्न कि नीति शिक्षा को किस विशेष प्रकार की शिक्षा के साथ दिया जाना चाहिये या किस विशेष प्रकार की शिक्षा के साथ नहीं दिया जाना चाहिये के सम्बन्ध में *यह पाया गयाकि नीति शिक्षा के लिये वर्तमान काल की तरह का कोई पाठ्यक्रम आरोपण नहीं होता और न ही वर्तमान काल की तरह की कोई कक्षा–कक्षायें होती है। क्या हैं नीति नियम और कैसे नीति नियमों की अनुपालना करें आदि का सीखना–सिखाना चलता रहता है; चलते–फिरते, कार्य–करते आदि सभी स्थितियों में हर क्षण के व्यवहार करते समय। नीति शिक्षा के अन्तर्गत ऐसी शिक्षा, विशेषतौर से बच्चों को, और बड़ों को भी दी जाती है।* इससे यह भी साफ है कि नीति शिक्षा पाने के लिये आजकल की शिक्षा प्रणाली की तरह विद्यार्थियों में पहले से किसी प्रकार की योग्यता, या किसी कक्षा तक पास होना, या किन्हीं विषयों की परीक्षा पास किया होना, या किसी व्यवसाय का करने वाला ही होना, या रहन–सहन के किसी स्तर का होना, या किसी मात्रा की धन–सम्पत्ति का मालिक होना आदि जरूरी नहीं होता है। इस बात पर असहमति है ही नहीं कि व्यवहार करने का अभ्यास बच्चा जन्म पाने के पश्चात् अपने घर से शुरू कर देता है, तो इस प्रकार नीति नियम का भी अभ्यास भी बच्चा जन्म से करना आरम्भ करता है। बचपन में नीति नियम का भी अभ्यास करते–करते बच्चा उनका अभ्यस्त हो जाता है और फिर वैसा ही व्यवहार वह जीवन भर तक करता रहता है। जीवन से मृत्यु तक की समय अवधि में नीति नियम का भी अभ्यास करने के लिये अलग से किसी समय की आवश्यकता नहीं होती है। इस प्रश्न कि बच्चों को आजकल की शिक्षा प्रणाली के साथ क्या नीति शिक्षा के सम्बन्ध में कोई

विशेष विषय निर्धारित किया जाना चाहिये के सम्बन्ध में, इसलिये *शोधिका द्वारा यह पाया गया है कि हिन्द स्वराज और मंगल प्रभात दोनों में इस प्रकार का कोई जिक्र तो है नहीं; फिर भी गांधी की यह बात ध्यान देने लायक है कि नीति नियमों की अनुपालना करना सिखाना बच्चे में लगातार जारी रहता है, लेकिन यदि बच्चों को अक्षर ज्ञान की आवश्यकता हो, तो बच्चे एक–दूसरे बच्चे से और किसी मास्टर से पूछ कर ज्ञान हासिल कर सकते हैं।* इसके अलावा गांधी की यह बात भी ध्यान आकर्षित करती है कि गांधी द्वारा बेसिक शिक्षा के लिये समर्थित पाठ्यक्रम में 'आचरण की शिक्षा' नामक विषय पाठ्यक्रम में निर्धारित था। *इन तथ्यों के आधार पर शोधिका द्वारा यह पाया गया है कि 'नीति शिक्षा' नामक विषय वर्तमान शिक्षा प्रणाली की स्कूली की शिक्षा में माध्यमिक शिक्षा की प्रत्येक कक्षास्तर के लिये रखे जाने से भी बच्चों द्वारा नीति नियम की अनुपालना करना सिखाना व करने का अभ्यस्त बनाना सम्भव होगा और ऐसा करने से आगे आने वाले समय में नीति शिक्षा को पूरी तरह से आसानी से लागू किया जाना सम्भव हो सकेगा।*

किसी विषय की शिक्षा के साथ 'नीति शिक्षा' कितनी गहरायी तक दी जानी चाहिये के सम्बन्ध मे पाया गया किनीति और नीति नियम इस प्रकार के नहीं है कि उनको टुकड़ों–टुकड़ों में बाँटा जाये और फिर उन टुकड़ों–टुकड़ों की शिक्षा अलग–अलग काल में दी जाये क्योंकि नीति/सत्य एक है, पूर्ण है, विभाजनयोग्य नहीं है; और इसी प्रकार नीति नियम या कहें आचरण नियम में से प्रत्येक स्वयं में एक व पूर्ण हैं, विभाजनयोग्य नहीं है और पूर्णरूप में अनुपालनीय है। *अतः शोधिका द्वारा यह पाया गया है कि बच्चों को उपरोक्त नीति नियमों में से हर एक को दैनिक व्यवहार में अविराम अभ्यास कराते हुये बच्चों में उस प्रकार के व्यवहार करने की आदत डलवाते रहना चाहिये और साथ ही साथ समय–समय पर उनके कार्य करने के तरीकों आदि के अवलोकनों से जाँच करते रहना चाहिये कि उनका व्यवहार से अपेक्षित परिणाम दिख रहा है या नहीं, और इस प्रकार का शिक्षा कार्य लगातार चलता रहना चाहिये।*

नीति शिक्षा, जिसके बारे में शोध–प्रश्न 1 व 3 के सम्बन्ध में ऊपर लिखा गया है, का शिक्षण गांधी की नवीन संकल्पना थी। नवीन होने के अनेक कारणथे। विद्यमान शिक्षा किताबी ज्ञान आधारित होना, शिक्षा द्वारा पारंपरिक ज्ञान का लुप्त होना, शिक्षा के बावजूद समृद्ध संस्कृति का संरक्षण व उन्नति न होना, शिक्षण स्थानीय व मातृभाषा में न होना, शिक्षा पूरी करने के बाद भी छात्रों का नैतिक व आध्यात्मिक विकास न होना, शिक्षित छात्रों का बौद्धिक विकास भी पर्याप्त न होना, शिक्षा में शारीरिक विकास करने संबंधी आवश्यक बातों का आभाव होना, शिक्षा द्वारा बच्चों में अंतर्निहित शक्तियों को पहचानने की कोई व्यवस्था न होना, शिक्षा द्वारा छात्रों कोउचित आचरण न सिखाना, शिक्षा का स्थानीय भौगोलिक, ऐतिहासिक, पर्यावरणीय, सांस्कृतिक, आर्थिक व राजनीतिक स्थितियों के संदर्भ में न होना, शिक्षा पूरी करने के बाद भी विद्यार्थियों का

बेरोजगार होना, आदि। अतः नीति शिक्षा देने वाले शिक्षकों को उन कमियों को समझने वाला तथा उनको दूर करने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ ही होना मात्र आवश्यक नहीं है, बल्कि अपने लक्ष्य को पूरा करने में जुटने और तब तक जुटे रहने वाला होना चाहिए जब तक की वह लक्ष्य को हासिल न कर लें।

दूसरे, शिक्षकों को स्वयं भी पहले नीति व इसके नियमों के अर्थ व महत्व, फायदे व इसके विरुद्ध लगाए जाने वाले आरोपों व आलोचनाओं का ज्ञान होना चाहिए। नीति व नीति–नियमों की शिक्षा के प्रति आलोचनाओं के संदर्भ में स्वविवेक से नीति व नीति–नियमों की शिक्षा के समर्थन में औचित्य का मत होना चाहिए। नीति शिक्षा दिए जाने के प्रति पूरी श्रद्धा होनी चाहिए। नीति शिक्षा दिए जाने के परिणाम के प्रति पूर्ण आस्था व विश्वास होना चाहिए। शिक्षा के संसाधनों, विशेषकर धन की कमी, का ज्ञान होना चाहिए। शिक्षकों को शिक्षण कार्य करने वाले को नौकर और इस कार्य से मिलने वाले पारिश्रमिक को वेतन नहीं समझने वाला होना चाहिए। शिक्षकों को शिक्षण कार्य करने के बदले में धन प्राप्त होने की अपेक्षा नहीं करने वाला होना चाहिए। बल्कि नीति शिक्षा जैसी सबसे महत्वपूर्ण शिक्षा विद्यार्थियों को निशुल्क देने का अभिलाषी होना चाहिए। इस प्रकार की निष्ठा, विश्वास, श्रद्धा, अपेक्षाओं, समझ व दृढ़ प्रतिज्ञ व्यक्तिकी पूर्व योग्यताएं रखने वाले नीति शिक्षा के शिक्षक हो सकते हैं।

इन पूर्व योग्यताओं के बाद भी नीति शिक्षा के शिक्षकों में निम्न गुणों का होना आवश्यक है। सबसे पहले आवश्यक है ऐसे शिक्षक में इस बात का होना कि सत्य का,यानी प्रकृति को पहचानने वाला, उसको प्राप्त करने के मार्ग पर चलते रहने वाला, तथा उस परम सत्य शक्ति की सेवा उसके अंशों,यानी प्रकृति में रहने वाले सभी जीव–निर्जीव की सेवा करने वाला हो, उसे अहिंसा का पालन करने वाला तथा आत्मबल की अनुभूति करने वाला होना चाहिए। यह भी परम आवश्यक है कि उसका उद्देश्य मानव की सेवा करना तथा मानव की स्थिति को सुधारने में निरंतर श्रद्धा, विश्वास, साहस, आत्मसंयम व पवित्र मन से लगे रहने वाला होना चाहिए। उसकी इच्छाएं बहुत कम होना चाहिए। तथा ज्ञानेंद्रियों, कर्मेंद्रियां, मन, बुद्धि व चित्त व अहं को शुद्ध व नियंत्रित करने में व्यस्त रहने वाला होना चाहिए। अपने को कभी पूर्ण हुआ न समझकर निरंतर इस बात की जाँच करते चलते रहने वाला होना चाहिए कि कहीं वह सत्याग्रह के पथ व नीति नियमों पर चलने के पथ से इधर–उधर तो नहीं जा रहा है। इस प्रकार शिक्षक चरित्रवान व मानव मूल्यों से युक्त होना चाहिए।नीति शिक्षा का शिक्षक बनने वाले व्यक्ति में काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, घृणा, ऊँच–नीच का भाव नहीं होना चाहिए। ऐसे शिक्षक व्यक्ति को अपने को शिक्षक नहीं, बल्कि विद्यार्थी समझ कर जीवनयापन तथा शिक्षण करने वाला होना चाहिए। बहुत महत्वपूर्ण गुण जिसका होना ऐसे शिक्षक में होना चाहिए, वह है, श्रम का महत्व व श्रम का गौरव समझने वाला और उसके अनुसार ही जीवनयापन करने वाला, श्रम से कमाई गई वस्तुओं का ही उपभोग करने वाला होना चाहिए। महिलायें अपनेप्राकृतिक गुणों, स्वभाव, कर्म व

भावनाओं के आधार पर व उक्त गुणों से युक्त होने पर नीति शिक्षाकी शिक्षिकायें बनने की प्राथमिकता के आधार पर हकदार हैं।निःसन्देह, न तो गांधी के जीवनकाल में ऐसे पुरुष व स्त्रियों की बहुतायत थी और न वर्तमान समय में। उलटे वर्तमान में ऐसे व्यक्तियों की संख्या पहले की अपेक्षा कम ही देखने व सुनने में मिलती है। गांधी के समय में जो व्यक्ति भी ऐसे शिक्षण में लगे वह सभी ऐसे शिक्षण के परिणामों को देख कर चौंक से गए थे, और वह सभी स्वयं को गौरवान्वित समझते थे। वर्तमान में आवश्यक है, पूर्ण निष्ठा, लगन, मेहनत व दृढ़ प्रतिज्ञ होकर नीति शिक्षा कार्यक्रम को आरंभ करना और इसको शिक्षण कार्य के योग्य व्यक्ति, जो वर्तमान के अनैतिक व्यवहार की प्राचुर्यता की स्थिति में इधर–उधर जीवन व्यतीत कर रहे हैं, को एकजुट करना। ऐसे नीति शिक्षा के शिक्षक बन सकने लायक किशोरों व नव युवकों की खोज करनी होगी। यह कार्य वास्तव में मुश्किल है, किंतु करना भी तो है ही।

ऐसे शिक्षको का कार्य शुरु करने के पहले, उनको गहन प्रशिक्षण की आवश्यकता भी बहुत आवश्यक है।

प्रशिक्षण के दौरान ऐसे शिक्षक बनने लायक लोगों को निम्न बातों के लिए विशेष तौर से प्रशिक्षित करना होगा। शिक्षा हाथ, पैर, व शरीर से श्रम कराते–कराते तथा लोगों की व स्वयं विद्यार्थियों की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली किन्हीं वस्तुओं के उत्पादन की क्रियाओं को सिखाने के माध्यम से होगी। इन उत्पादन क्रियाओं में लगने वाली सामग्री विद्यार्थियों के निवास स्थल व उसके इर्द–गिर्द की होनी चाहिए। विद्यार्थियों को श्रम करने के कार्य उनकी रुचि व उनमें छुपी शक्तियों के अनुसार होना चाहिये। बच्चों का उद्देश्य धन कमाना नहीं हो, किंतु वह क्रियाएं जो वो करें उनसे जो उपयोगी वस्तुएं बने व उनसे कुछ धन मिले, ऐसे प्रयत्न करना चाहिये।यानी, विद्यार्थियों को आरंभ से ही स्वावलंबी बनाना है। निःसंदेह, ऐसी शिक्षा देने वाले व्यक्तियों को अनेक प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन करना व उद्यम करना सिखाना होगा। उन उत्पादन विधियों में इस्तेमाल होने वाले औजारों आदि की बनावट व कार्यपद्धति व सैद्धांतिक कार्य पद्धति का ज्ञान कराना होगा। तथा उधोगों को समस्त प्रकार श्रम से कराने वाली क्रियाओं को सिखाते–सिखाते साथ ही साथ गणितीय, रेखागणितीय, भौतिकी, रसायनिक, जीव विज्ञान, वनस्पति विज्ञान आदि के सिद्धांतों व नियमों की जानकारी भी करानी होगी।उक्त क्रियाओं में प्रयोग की जाने वाली सामग्री का ऐतिहासिक, भौगोलिक पर्यावरणीय, नैतिक और आर्थिक ज्ञान भी साथ–ही–साथ शिक्षार्थियों को कराना आवश्यक होगा। शिक्षक बनने वाले व्यक्तियों को इस बात में पारंगत बनाना होगा कि उपर्युक्त शारीरिक क्रियाओं के साथ–साथ जिन विषयों, नियमों, व पुस्तकीय सिद्धांतों की जानकारी विद्यार्थियों को दें वह पुस्तकीय नहीं हो, बल्कि वह व्यवहारिक व स्थानीय भाषा में हो; कार्यकारण संबंध प्रदर्शन के माध्यम से एक प्रयोगशाला में प्रयोग करने की तरह हो; बच्चों के मस्तिष्क पर अधिक जोर न पढ़ने देने वाले तरह से दी हुई हो किंतु तुरंत सीख देने व दीर्घ कालीन तक स्मृति में रहने

वाली शिक्षण विधि से हो; प्रशिक्षणर्थियों को अभ्यस्त करना होगा कि उनकी, पढ़ाते समय या अन्य समय में, भाषा मृदु ही हो, विनम्रता पूर्ण हो;उनके व्यक्तित्व में विद्यार्थियों को नीति नियमों के पालक चरित्रवान तथा श्रमिक की छवि दिखे। प्रशिक्षण के दौरान प्रशिक्षणार्थियों में यह भावना स्थाई कर देनी चाहिए कि उन्हें पूरी शक्ति से बच्चों को स्वावलंबी तथा शारीरिक, नैतिक, आध्यात्मिक, व बौद्धिक सभीरूपों से तथा सबसे अच्छी तरह से विकसित व्यक्तित्व संपन्न बनाना ही है। और इस बनाने के कार्य में, चाहे इसके एवज में कुछ धन मिले या न मिले, तब तक लगे रहना है जब तक कि यह शुभ व नैतिक उद्देश्य की पूर्ति न हो जाए, चाहे इसके लिए उन्हें आत्मबलिदान क्यों न करना पड़े। अध्यापन–प्रशिक्षणार्थी भले ही परंपरागत शिक्षा हेतु ही हों, फिर भी नीति शिक्षा हेतु उनको भी प्रशिक्षण देना बहुत आवश्यक है। कारण? नीति शिक्षा सारे प्रकार की शिक्षा के पहले बच्चों को/बड़ों को दिए जाने वाली शिक्षा है। नीति शिक्षा उन मानव के लिए भी जरूरी है जो अन्य किसी प्रकार के विषय की शिक्षा न पाये हुये हों। नीतिशिक्षा सर्वप्रथम, सर्वोच्च तथा सबसे उत्कृष्ट शिक्षा हैं। नीति शिक्षा देने वाले शिक्षकों की जरूरत अधिक मात्रा में है और इनको अल्प अवधि में सृजित नहीं किया जा सकता है। अतः आज से ही नीति शिक्षा को जानने वाले और लागू करने वाले शिक्षकों की संख्या बढ़ाना शुरु कर देना चाहिए ताकि निकट भविष्य में नीति शिक्षा देने वाले शिक्षक पर्याप्त संख्या में उपलब्ध कराने में परंपरागत शिक्षा हेतु वर्तमान के अध्यापन–प्रशिक्षणार्थी मदद कर सकें और नीति शिक्षा का प्रचार व प्रसार करके आगे आने वाले समय में नीति शिक्षा पूर्णरूपेण तथा व्यापकरूप में बच्चों की पहली शिक्षा बन सके। *इस प्रकार, शोध–प्रश्न 1 व 3 (नीति, नीति नियम व नीति शिक्षा) के सम्बन्ध में व्यक्त विवेचन व निष्कर्ष तथा इस शोध–प्रश्न 5 सम्बन्धी उपरोक्त वर्णन के मद्देनजर शोधिका ने निष्कर्षस्वरुप यह पाया है कि 'अध्यापन–प्रशिक्षणर्थियों को भी नीति शिक्षा प्रदान करनी चाहिये'।*

शोध–प्रश्न 6, 9 व 11 – कि क्या 'नीति शिक्षा' बेरोजगारी की स्थिति का कारक नहीं होगी और क्या 'नीति शिक्षा' विद्यमान बेरोजगारी को दूर करने में सहायक होगी; क्या 'नीति शिक्षा' गरीबी की स्थिति पर काबू पा सकेगी; तथा क्या 'नीति शिक्षा' वैश्वीकरण में बाधा नहीं होगी– के सम्बन्ध में निम्न वास्तविकतायें भी, उस विवेचन व निष्कर्ष के अलावा जो शोध–प्रश्न 1 व 3 नीति व नीति नियमों के सम्बन्ध में व्यक्त किये गये है, दृष्टव्य हैं। नीति शिक्षा में शारीरिक श्रम व उद्योग द्वारा बच्चों को बचपन से ही शिक्षा दी जाती है। ऐसी शिक्षा वैज्ञानिक ढंग से दी जाती है। बच्चे ज्ञानेंद्रियों व कर्मेंद्रियों के प्रयोग करते हुए उद्यम करते हैं। किसी प्रकार के उत्पादन की क्रियाएं करते हैं और साथ–ही–साथ उस उत्पादन कार्य में प्रयोग किए जाने वाले औजारों आदि के बनावट के और उनके कार्य करने के पीछे लगने वाले भौतिक विज्ञान व तकनीकी ज्ञान आदि विज्ञानों के ज्ञान को भी हासिल करते रहते हैं। यही नहीं,उक्त उत्पादन

क्रिया में लगने वाली सामग्री का; इस सामग्री से संबंधित इतिहास व भूगोल का; सामग्री के मिश्रण तैयार करने के साथ–साथ जोड़, घटाना, गुणा, भाग व अनुपात आदि गणितीय क्रियाओं को भी सीखते रहते हैं। समूहों में काम करते–करते नीति नियमों के अनुसार व्यवहार करने में अभ्यस्त होते रहते हैं। सृष्टि का, पर्यावरण का ज्ञान होता रहता है। प्रकृति का आदर करना सीखते रहते हैं। किताबी शिक्षानहीं दी जाती है। इस प्रकार बचपन से बच्चों को श्रम कराते हुए वैज्ञानिक व प्रायोगिक ढंग से विज्ञान, कला, गणित, नीति नियम, तकनीकी ज्ञान, आचरण आदि समस्त प्रकार की शिक्षा दी जाती है। इससे बच्चों का शारीरिक, बौद्धिक नैतिक व आध्यात्मिक सभी तरह का विकास करते हुए उनका समग्र विकास किया जाता है। और दसवीं कक्षा उत्तीर्ण करके जब निकलते हैं, तो किसी–न–किसी व्यवसायिक कार्य/ उद्योग में पूर्ण निपुणता युक्त होते हैं और तुरंत ही जीवनयापन हेतु व्यवसाय को स्वयं बिना किसी के आश्रित हुए चलाने में सक्षम होते हैं।यानी, नैतिकतापूर्ण, आध्यात्मिक–भावनायुक्त,नीति व नीति नियमों का पालक बनकर, वास्तविकरूप व व्यवहारिकरूप की बुद्धियुक्त, शारीरिक रूप से स्वस्थ, व्यवहार शील, सहयोग भावनायुक्त, सामंजस्यपूर्ण व चरित्रवान तथा रोजगारयुक्त बालक बनकर विधार्थी निकलता है। इस प्रकार नीति शिक्षा से बेरोजगार की तथा गरीबी की समस्या उत्पन्न ही नहीं होती है।

नीति शिक्षा में प्रमुख हैः सत्य व अहिंसा की शिक्षा, जिससे विधार्थी को सत्य और अहिंसा के भाव से अवगत करा दिया जाता है और इन दो बातों के अनुसार दैनिक रूप से व्यवहार करना सिखा दिया जाता है। उस विधार्थी में हर स्थिति पर विजय पाने में सक्षम व शक्तिशाली आत्मबल विकसित होकर आत्म–बलिदान करने की क्षमता अपने आप आ जाती है। इनके अतिरिक्त नीति शिक्षा के अंतर्गत अन्य दस नीति नियमों के अनुसार हर क्षण व्यवहार करने में अभ्यस्त कराया जाता है,इससे वह और भी अधिक शक्तिशाली बन जाता है और उसके अंदर हर संकट पर शांतिपूर्ण, संयमपूर्ण, प्रेमपूर्वक, श्रद्धापूर्वक, विश्वासपूर्ण, व सहानुभूतिपूर्ण ढंग से विजय पाने की शक्ति पैदा हो जाती है। इसके साथ उसमें गांधी के अर्थशास्त्र की जो समझ उत्पन्न हो जाती है उसके अनुसरण में वह बेरोजगारनहीं रहता है और यदि है तो रोजगारयुक्त व स्वावलंबी बन जाता है।अतः स्पष्ट है कि नीति शिक्षा से विद्यमान बेरोजगार की तथा गरीबी की स्थिति भी दूर होगी।

नीति नियम इस बात को मान्य नहीं करतेकि भावना–प्रधान मनुष्य पर भावना–आधारित नियमों के अलावा सांसारिक अन्य नियम लागू किए जा सकते हैं; भले ही लोग नियमों को कितना भी सही माने और लागू करने के खूब तर्क दें। नीति–नियमों की दृष्टि से संसार में अर्थशास्त्र के नाम से पुकारे–जाने वाला शास्त्र वास्तव में कोई शास्त्र है हीनहीं। उक्त अर्थशास्त्र धन के माध्यम से वस्तुओं और यहाँ तक कि मानव को भी खरीदने बेचने के नियमों को बताता है। और इस अर्थशास्त्र व इसके नियमों को चंद लोगों ने जिन्हें न तो सत्य/ नीति की जानकारी है, न

ही नीति नियमों की जानकारी है, और न ही मानव व मानव धर्म का ज्ञान है– सिर्फ अपने स्वार्थ की पूर्ति हेतु बनाया गया है। जबकि जीव–निर्जीव व नीति नियम प्रकृति के बनाए हैं और सभी जीव–निर्जीव की उत्पत्ति और उनका संधारण उनके संधारक व जनक द्वारा उन प्रकृति के नियमों से ही होता है। मनुष्य प्रकृति के कार्य करने में स्वयं योग्य नहीं है। मनुष्य के बनाए नियम प्रकृति व प्रकृति के नियमों, अर्थात् नीति नियमों के ऊपर हो ही नहीं सकते हैं। मनुष्य के बनाए नियम, अर्थशास्त्र, या वस्तुओं के क्रय–विक्रय करने की नियम संहिता भौतिक वस्तुओं/इंद्रियगोचर पदार्थों के लिए हैं। मनुष्य में इंद्रियगोचर व इंद्रियातीत (सिर्फ अनुभूतियोग्य) दोनों ही प्रकार के अवयव प्रकृति ने दिए हैं। इसलिये भी अर्थशास्त्र और इसके नियम मनुष्य पर लागू नहीं हो सकते हैं।और भी अर्थशास्त्र धन के फायदे–नुकसान और धन के अधिक–से–अधिक एकत्र करने के ढंग के बारे में कहता है। और इस सांसारिक अर्थशास्त्र में प्रकृति में समाहित सभी जीव–निर्जीव का हित करने और उनके प्रति प्राकृतिक न्यायपूर्ण व्यवहार करने के बारे में जानकारी व विद्वतानहीं दी जाती है। इन तमाम सच्चाई के दृष्टि से मनुष्य पर शासन करने के लिए और मनुष्य के व्यवहार को नियंत्रित करने के लिए लौकिक मानव निर्मित अर्थशास्त्र का प्रयोग स्पष्टतः अनुचित है और इसलिए अर्थशास्त्र का तुरंत त्याग कर देना चाहिए।अतः स्पष्ट है कि नीति शिक्षा बेरोजगारी का कारक तो होगी ही नहीं, बल्कि उल्टे विद्यमान बेरोजगार की तथा गरीबी की स्थिति को दूर करने में सहायक भी होगी।

संसार में प्रचलित अर्थशास्त्र मनुष्य को जड़/ भौतिक मशीन की तरह अपने व्यवसाय को चलाने का और उससे फायदा कमाने का साधन और लागत मानता है और यह भूल जाता है कि मनुष्य में स्थूल व सूक्ष्म(अनुभूतियोग्य/ भावनारूप) दोनों ही प्रकार के प्रकृति प्रदत्त अवयव हैं। फिर मानवीय नौकर और अनुभूति व भावना द्वारा संचालित नौकर को इंजन मशीन समझते हुए उसमें धन रूपी कोयला डाल–डाल कर काम लेता है। यह भी सरासर गलत है और मानव के हित में भी नहीं है। सभी जानते हैं कि किसीमानव से जो काम मानवीय व्यवहार व प्रेम से लिया जा सकता है, वह काम पैसा देकर नहीं करवाया जा सकता है। यह बात सेवारूपी कर्म के विषय में और ज्यादा सिद्ध है। आपस में स्नेह,सहानुभूति, व प्रेम रखकर ही प्रकृति व भावनायुक्त व आत्मबलयुक्त मनुष्य से काम लेना ही ठीक है। इसलिए मालिक और नौकर दोनों के लिए ही नीति व नीति नियमों की शिक्षा आवश्यक है, न कि संसार में प्रचलित अर्थशास्त्र व इसके नियम की। क्योंकि नीति–नियमों में न्याय, प्रेम, सहानुभूति, त्याग वगैरह समाहित हैं। ऐसी स्थिति में स्पष्टतः नीति शिक्षा बेरोजगारी का कारक तो होगी ही नहीं, बल्कि विद्यमान बेरोजगार की तथा गरीबी की स्थिति को दूर करने में सहायक होगी।

मान लिया जाए कि धन के माध्यम से और व्यवसाय के माध्यम से वस्तुओं और सेवाओं का क्रय–विक्रय करना आवश्यक है, फिर भी संसार में प्रचलित अर्थशास्त्र मानव धर्म की दृष्टि से उचित नहीं है। कारण? उक्त अर्थशास्त्र सिखाता है, दूसरों के दुःख–सुख की परवाह न करके

धन/रूपए स्वार्थ की पूर्ति करने व अधिक–से–अधिक धन एकत्र करना और इसलिये व्यापार और अर्थशास्त्र नीति नियमों मानव व धर्म के अनुकूल नहीं हैं। व्यापारी द्वारा अधिक से अधिक धन कमाना और धन इकट्ठा करने का व्यवहारइसलिए चल रहा है कि संसार में कुछ स्वार्थी व धनवान लोगों के बहकावे में आकर व उनके चक्रव्यूह में फंस कर ऐसा व्यवहार करना सभी लोगों ने व्यापारियों/व्यवसाय का सिद्यान्त मान लिया और ऐसे प्रचलन को मान्यता दी है। इस चोरीरूप प्रचलन व मान्यता को तुरन्त बदल डालना चाहिए। व्यापारी का धन कमाने का एक ही उद्देश्य होना चाहिए और वह है, लोगों की व जनता की स्वयंकमाए हुए धन और उक्त धन को बिना एकत्र करके व बिना अपनी संपत्ति मानकर–सेवा करने में पूरा खर्च करना तथा जनता को सुख पहुँचाने में खर्च करना। और इस उद्देश्य की पूर्ति में वह कमाया हुआ धन ही नहीं बल्कि अपनी जान भी उसी प्रकार दे दे जिस प्रकार सेना व पुलिस के जवान जनता की रक्षा जनता को सुखी रखने व जनता को प्रताड़ना से बचाने के लिए अपनी जान देते हैं। नीति नियम; उदाहरणतः अपरिग्रह, अस्तेय, आत्मबलिदान आदि; यही कहते हैं।दस रूपये किलो के आलू होते हैं और उसकी चिप्स को कई गुना प्रति किलो के दाम से बेचा जाता है। फसल कटने पर अनाज की जमाखोरी करके बाद में अधिक मूल्य पर बेचा जाता है। स्पष्टतः, बाद में वह अनाज अधिकतर वही लोग खरीदते हैं जिनके पास ज्यादा आमदनी नहीं होती है और जो रोज–कमाना और रोज–खाना पर आश्रित होते हैं। यह तो मात्र उदाहरण हैं, किंतु बाजार में देखे तो बहुत से ऐसे मामले दिखते हैं जिसमें कम–से–कम कीमत पर वस्तुओं को खरीदकर लोगों से अधिक–से–अधिक कीमतया मुँह माँगे मूल्य वसूलना और वह भी अधिकतर उन प्रकृति द्वारा बनाए गए पुत्र–पुत्री, माता–पिता, मित्र आदि के रुप में उन लोगों से जिनके पास धन की कमी होती है। यह अनीति है, अर्थात् नीति नियमों के विरुद्ध है। अतः साफ बात है कि ऐसी स्थिति में नीति शिक्षा बेरोजगारी का कारक नहीं होगी तथा मौजूद बेरोजगार की व गरीबी की को दूर भी करेगी।

क्या मनुष्य हीरे, जवाहरात, सोना, चाँदी, रुपए का भक्षण कर सकता है? क्या इनसे अपने को स्वस्थ रख सकता है? सर्वविदित है,नहीं। क्योंकि ऐसा करना प्रकृति के विधान व नियमों में संभव नहीं है। अर्थात्, नीति नियमों की ही पालना करना चाहिए। और भी, उक्त महंगी भौतिक वस्तुएं क्या वास्तव में सबसे अधिक बलवान है?नहीं, सर्व विदित है। क्योंकि इन सबसे अधिक बलवान है, नीति नियमों में बताया गया प्रकृत्ति प्रदत्त असीम शक्ति वाला बल, अर्थात्, आत्मबल और नीति जो नियमों की अनुपालना से ही प्राप्त किया जा सकता (कीमती वस्तुओं से नहीं); जिसमें सद्गुण, सद्व्यवहार, त्याग, सदाचार, अहिंसा, विनम्रता आदि होतें हैं। इस प्रकार नीति–नियमों में बताया गया आत्मबल इस सृष्टि में विद्यमान सभी बलों से बलवान और सच्चा है, और इसी बल को लोगों को प्राप्त करना चाहिए (न कि रुपए–पैसे, धन, सोना, चाँदी,

जवाहरात)।इन बातों का भी परिणाम यह है कि नीति शिक्षा से बेरोजगारी नहीं होगी व नीति शिक्षा से विद्यमान बेरोजगार व गरीबी दूर होगी।

नीति नियम कहते हैं कि दूसरों को नहीं सता कर, कष्टनहीं पहुँचाकर, वस्तुओं की कमी की स्थिति न पैदा करके, वस्तुओं की जमाखोरी न करके, कम–से–कम मूल्य की वस्तुओं को ज्यादा–से–ज्यादा कीमत पर न बेचकर, प्रतिस्पर्धा कर व्यापार न चलाकर, लोगों को भिखारी व बर्बाद नहीं करके, लोगों को न ठगकर धन कमाकर धन के माध्यम से वस्तुओं और सेवाओं का आदान–प्रदान नैतिक नियमो की पालना करते हुए करना चाहिए। और इस प्रकार नीति नियमों की पालना से कमाये धन का उपयोग लोगों की सेवा व उन्हें स्वस्थ रखने के लिए व्यवसाय कार्य करना चाहिए। प्रकृति प्रदत्त न्याय का अनुसरण करते हुए व्यवसाय करना चाहिए। न्याय को और न्याय करने को समझने के लिए आवश्यक है, नीति शिक्षा देकर लोगों में न्याय–बुद्धि विकसित की जाए और उनको इस न्याय–बुद्धि के अनुसार काम व व्यवसाय करने को अभ्यस्त बनाया जाए। नीति नियम की अनुपालना से यह संभव हो सकेगा कि छोटे–छोटे समूहों में लोग रहेंगे और मानव–भावना से युक्त रहते हुए विश्व–बंधुत्व कायम करेंगे, प्राकृतिक सौंदर्य की प्रशंसा व आदर करते हुए उसका संरक्षण करेंगे, तथा अपने व सभी के जीवन का केंद्र–बिंदु प्रकृति/ सृष्टिऔर सत्य बनाए रखेंगे। निःसंदेह, ऐसे लोग वह स्वज्ञान युक्त होंगे और ऐसा स्थान परस्पर सहयोग, समानता, स्वशासन, तथा स्वव्यवस्थित होगा। और परिणामतः, इस प्रकार की स्थिति में स्पष्टरुप से नीति शिक्षा से बेरोजगारी तो होगी ही नहीं, साथ–ही–साथ विद्यमान बेरोजगारी की तथा गरीबी की स्थिति भी दूर होगी।

वैश्वीकरण शब्द का प्रचलित अर्थ है, आर्थिक वैश्वीकरण। वैश्वीकरण का सीधा व सरल अर्थ है व्यापार करके धन कमाना, एक देश के एक शहर से दूसरे के व्यवसायियों के मध्य ही नहीं बल्कि विश्व के देशों के मध्य आपस में धन के माध्यम से वस्तुओं का क्रय–विक्रय। अप्रत्यक्षरूप से वैश्वीकरण से आशय है कि प्रकृति द्वारा एक विशिष्ट स्थान के जीव–निर्जीव को वहाँ के मौसम व पर्यावरण के अनुकूल प्राकृतिकरूप से स्वच्छ व स्वस्थ जीवन यापन के लिये उपलब्ध करायी गयी मूलभूत आवश्यक वस्तुओं को धन, सम्पदा एकत्र करने, अनावश्यक/गैर बुनियादी/दिखावटी रहन–सहन स्तर बनाने, ऐश–आराम भोगने, इन्द्रिय–विषयों को नाजायज भोगने, आदि के लिये उस विशिष्ट स्थान से अन्य स्थान/स्थानों पर ले जाना (क्रय–विक्रय)। वैश्वीकरण प्रक्रिया का मुख्य माध्यम होता है, मुद्रा/धन/अर्थ। क्रय–विक्रय में धन/अर्थ होने के निहित होने के कारण उसको अध्ययन/ज्ञान को शास्त्र का रूप दिया गया और फलतः उसे अर्थशास्त्र कहा गया।

गांधी के अनुसार प्रचलित अर्थशास्त्र सिर्फ येन–केन–प्रकरेण धन एकत्र करने के नियम बताता है। धन व्यक्तियों की संकल्पना है। धन और धन प्राप्त करने की तरकीबों को सत्य/नीति/सृष्टिकर्ता/सृष्टि–परिचालन नियमों/नीति नियमों द्वारा नहीं बनाया गया है। धन

को कोई व्यक्ति खानहीं सकता। प्रकृति में उपलब्ध वस्तुओं व जीव–निर्जीव के आभाव में धन से कोई भी व्यक्ति खुद तो जी ही नहीं सकता, दूसरों की बात तो अलग है। व्यक्ति यदि जीवनयापन कर सकता है, तो सिर्फ प्रकृति के आधार पर और प्रकृति द्वारा उपलब्ध करायी गयी जीव–निर्जीव वस्तुओं व पर्यावरण के आधार पर और यही मानव व सभी अन्य के लिये इस संसार में सबसे महत्वपूर्ण हैं। और इसीलिये इनको मानना, इनको स्वीकार करना और इनके अनुसार ही समस्त कार्य सम्पादित करना मानव व प्रकृति के अन्य सभी अवयवों का सर्वप्रथम सर्वोत्कृष्ट तथा परम धर्म है व कत्वर्य है। प्रकृति ने मानव को जीने के लिये सब कुछ स्वतः ही दे रखा है, और इसके अलावा किसी चीज की आवश्यकता ही नहीं है। और यदि कोई चीज मानव ने बनायी है, तो वह मानव के त्रुटिहीन, पूर्ण, व अचूक नहीं होने के कारण त्रुटिपूर्ण है और सृष्टिकर्ता/सृष्टि के कार्यों में दखलन्दाजी है। प्रकृति में मनुष्य भी पशु है तथा पशुओं की भाँति हृदय/स्थूल/भौतिक शरीर युक्त (फलतः पशुबल युक्त), किन्तु साथ–ही–साथ पशुओं से सर्वश्रेष्ठ व अद्वितीय अदृश्य सूक्ष्म अवयव भी प्रकृति ने मनुष्य को दे रखे हैं। ये अवयव है, मन, बुद्धि, चित्त व अहंकार। प्रकृति ने इन अवयवों को इसलिये नहीं दिया कि इनके प्रयोग से सत्यरूपी सृष्टि, सृष्टिकर्ता, सृष्टि परिचालन नियम, व नीति नियमों पर ही मनुष्य उल्टे आक्रमण करें। अर्थात्, इनका सृष्टि आदि के अनुसार होने देना; उनका अनुकूल सदुपयोग करना तथा उनका दुरूप्योग न करना ही मनुष्य का सर्वप्रथम धर्म या कर्त्वय है। इनके सदुपयोग से व्यक्तियों को आत्मज्ञान प्राप्त होता है तथा पशुबल की तुलना में असीम शक्ति युक्त आत्मबल प्राप्त होता है। और यह आत्मज्ञान और आत्मबल शरीरबल (पशुबल) का शत्रु नहीं होता है। यह आत्मबल किसी भी रूप में व किसी भी स्थिति में सृष्टि, सृष्टिकर्ता, सृष्टि में निहित किसी भी जीव–निर्जीव, और सृष्टि परिचाालन नियम व नीति नियमों के लिये हानिकारक नहीं होता है, बल्कि इनसे समरसता रखते हुए ही व्यवहार करता है। परिणामतः विवेकयुक्त बात तो वस्तुतः यह है कि मानव को आत्मज्ञान (स्व–ज्ञान) करना चाहिये और अपने सर्वोच्च बल, आत्मबल का ही व्यवहार में प्रयोग करना चाहिये। साफ–साफ दिखता है कि धन बटोरने के नियम, यानी अर्थशास्त्र, तो इस आत्मज्ञान व आत्मबल का किसी भी तरह प्रतिस्थापना नहीं है। किसी के पास धन के बढ़ने का आशय यह नहीं होता है कि वह व्यक्ति मानवता मूल्यों का धनी है। जब तक उस व्यक्ति में मानव में सबसे पहले ग्रहण करने वाले नैतिक मूल्यों व मानवता के गुण व मूल्य से प्रचुर मात्रा में नहीं है, तब तकवह व्यक्ति कितनी भी अपरम्पार मुद्रा/आर्थिक–धन होने के बावजूद भी वास्तविक मानव नहीं कहलाया जायेगा, मनुष्य जाति व सृष्टि के अन्य जीव–निर्जीव के लिये हानिकारक होगा, मानव धर्म का पालन करने वाला नहीं कहा जायेगा, मानव के कत्वर्यों का पालन करने वाला नहीं कहा जायेगा। ऐसे व्यक्ति को नीति और नीति नियम की सीख लेने की जरूरत होगी। तो मानव के सर्वप्रथम व सर्वोच्च कर्म, धर्म व गुणों की बात के लिये अर्थशास्त्र के नियम बिल्कुल अनुपयुक्त है तथा लागू नहीं होते हैं।

अर्थशास्त्र के नियम यह नहीं कहते हैं कि उनके कौन–कौन से नियम मानव हेतु आवश्यकरूप से सबसे पहले ग्रहण करने वाले और सबसे उत्तम धर्म–कर्म–कर्त्वयों को पाने में और पालना करने में सहायक हैं। अर्थात्, अर्थशास्त्र स्वयं में मानव बनाने में और मानवमूल्य संधारित करने में सहायक नहीं है और इसलिये मानव के लिये निरर्थक है। अर्थशास्त्र तो आर्थिकरूप में सम्पन्न होने की इच्छा रखने वालों द्वारा दूसरे मनुष्यों को भूल–भूलैया में डालकर उक्त दूसरे मनुष्यों पर आरोपित किया गया नियमों का समूह है; यह कोई शास्त्र है ही नहीं।

अर्थशास्त्री कहते हैं कि अर्थशास्त्र में क्रय–विक्रय नियम लोगों की आवश्यकताओं व प्रतिस्पर्धा आधारित हैं। इस दलील की दृष्टि से भी अर्थशास्त्र मानव–धर्म/मानव सेवा धर्म, अन्य की सेवा का धर्म, तथा दूसरों के लिये त्याग के धर्म के सन्दर्भ में व्यर्थ, बनावटी व अस्वीकार्य है क्योंकि मनुष्य का कत्वर्य तो आवश्यकताओं को कम–से–कम करते हुए नगण्य बनाने का है और मनुष्य का कत्वर्य तो किसी से भी किसी प्रकार की होड़ या प्रतिस्पर्धा करने का है ही नहीं, और जबकि अर्थशास्त्र इच्छाओं को कम करने और प्रतिस्पर्धा रोकने के लिये कहता ही नहीं है। प्रतिस्पर्धा से कहा जाता है कि समृद्धि होती है। यह बात तभी सही है जब समृद्धि पाने की निम्न नीयत से परिणित न होः– धोखेबाजी करना, छल–कपट करना, लूट–खसोट करना, चोरी करना, ठगना, दूसरों से अधिक–से–अधिक आर्थिक लाभ उठाने आदि की नीयत का–जबकि यह सब बातेंअनीतिपूर्ण हैं, नीति व नीति नियमों द्वारा प्रतिबन्धित हैं। व्यापारी चाहता है कि वो जितना अधिक हो सके दूसरे का धन ले–ले; खरीददार चाहता है कि वह व्यापारियों से अधिक–से–अधिक आर्थिक फायदा उठा ले; नौकर चाहते हैं कि वो माल व सेवा का उत्पादन करने वाले से अधिक–से–अधिक आर्थिक धन वसूल लें। और इस कारण से सभी मनुष्य एक दूसरे से लड़ने–भिड़ने में ही मग्न रहते हैं, और मानव–धर्म की अनुपालना की ओर ध्यान दे ही नहीं पाते हैं। निश्चित ही ऐसे लोग व देश अपने नाश होने का बीज बोते हैं।

एक ओर तो संसार अर्थशास्त्र की दुहाई देता है और दूसरी ओर अपने अन्दर के दर्द व सच्चे अनुभव को प्राप्त कर व्यक्त करता है कि अल्लाह/ईश्वर/खुदा/ईसा आदि का आर्थिक धन से कोई सरोकार नहीं है। यानी, सच्चाई जानते हुए भी सच्चाई के मार्ग, अर्थात् नीति व नीति नियम अनुपालन मार्ग, पर नहीं चलने की भूल करता है, कथनी और करनी में अन्तर व्यक्त करता है और इस प्रकार अर्थशास्त्र नामक चन्द लोगों द्वारा स्वार्थपूर्ति हेतु बनाये नियमों के चक्रव्यूह में सभी फंसे रहते हैं।

सर्वव्यापक, सार्वकालिक और सर्वविदित बात यह है कि संसार में गरीब और अमीर दो ही प्रकार के मनुष्य है; अमीर और गरीब में कोई ऊँचा या नीचा नहीं है; अमीर और गरीब को शरीर व इसमें निहित बुद्धि भी सृष्टि ने दी है (खुद की बनायी नहीं है) और उसका मालिक/देने वाला कोई अन्य है। किन्तु स्वार्थ से स्वयं को अन्धा बनाकर व्यक्ति व्यवहार करते समय इस प्राकृतिक समानता को भूल जाता है और गलत व्यवहार करने के मार्ग पर चल देता है।

विचार करने के उद्देश्य से मान भी लें कि वस्तुओं के आपस में मुद्रा/रूपये–पैसे के माध्यम से आदन–प्रदान करना ठीक है, तो भी अर्थशास्त्र मानव अहित में ही सिद्ध होता है। कारण? मुद्रा का दुरूपयोग किया जाना। जिस प्रकार नदी के पानी के मार्ग में हस्तक्षेप करके उसके पानी को उस ओर ले जाते है जहाँ उस पानी की मानव हित में जरूरत है, उसी प्रकार का व्यवहार मुद्रा के साथ भी करने का सभी का फर्ज है। अर्थात्, मुद्रा जहाँ है (अर्थात्, मुद्रा से सम्पन्न धनवान के पास), उसे वहाँ ले जायें; जहाँ उस मुद्रा की जरूरत हो (अर्थात्, मुद्राविहीन, यानी, गरीब लोग के पास)। लेकिन सांसारिक अर्थशास्त्र ऐसा नहीं करता, या नहीं सिखाता, या नहीं कहता है। उल्टे वह तो किसी के पास मुद्रा को एकत्र करना और अधिक से अधिक जुटाना सिखाता है। परिणाम यह होता है कि ऐसी मुद्रा एक जगह जमे पानी की भाँति जहर हो जाती है और प्रकृति के जीव–निर्जीव अवयवों को क्षति पहुँचाने वाली और नाश करने वाली हो जाती है। अर्थशास्त्र यदि कोई शास्त्र कहलाने लायक अपने को बनाना चाहता है, तो उसे मुद्रा को उक्त नदी वाले उदाहरण की भाँति मुद्रा की गति व दिशा निर्धारित करने वाले नियम बनाना चाहिये।

प्रचलित अर्थशास्त्र तभी उपयोगी होगा, यदि वह व्यापारी द्वारा ऐसे व्यापार उन भावनाओं के करने का निर्देश दे, जिन भावनाओं को रखते हुए माँ अपने बच्चों को पालती व पोषती है; यदि अर्थशास्त्र यह निश्चित करे कि कोई भी उसके प्राकृतिकतौर से जीवनयापन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करने में लगने वाली मुद्रा के अतिरिक्त मुद्रा एकत्र ही न कर सके (अर्थात्, धन व सम्पति एक गड्ढे की भाँति एकत्र न होकर नदी की भाँति प्रवहित हो); यदि अर्थशास्त्र लोगों को उनकी जरूरतें कम करने के रास्ते बताये व सिखाये; यदि अर्थशास्त्र वस्तुओं के बनाने वालों के लिये ऐसे नियम बनाये कि उत्पादन करने वाले उत्पादन उसी भावनाओं से पूर्ण होकर ही करें जिन भावनाओं से युक्त होकर एक माँ अपने बच्चों के लिये स्वास्थरक्षक खान–पान की सामग्री बनाती है और उनके लिये उचित अन्य सामग्री देती है; यदि अर्थशास्त्र यह नियम बनाये और निर्देश/दिग्दर्शन दे कि सिर्फ प्राकृतिक जीवनयापन के लिये जरूरी मूलभूत आवश्यकताओं के उपयोग योग्य वस्तुओं का निर्माण करें व क्रय–विक्रय करें; यदि अर्थशास्त्र ऐसे नियम व दिशा निर्देश दे जिससे सभी का प्राकृतिक रहन–सहन का स्तर हो, लोगों में ऊँच–नीच का दर्जा न हो। संसार में मुख्यतः तीन प्रकार की अर्थव्यवस्थायें देखी जाती है और ये तीनों ही मानवगुणों को उत्पन्न करने वाली व उनको बनवायें रखने में सक्षम नहीं है। ये तीन प्रकार की हैः पूँजीवादी, लोकशाही और कम्यूनिज्म। पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था में गिने–चुने लोगों के पास विश्व की अधिकांश धन–सम्पदा होती है और विश्व के अधिकांश लोगों के पास कुल मिलाकर तुलना में गिनी–चुनी धन–सम्पदा होती है। यह भी मानव के लिये घातक है क्योंकि इसमें धनवान और धनविहीन के बीच एक बहुत चौड़ी खाई होती है और धर्मविहीन धन की कमी के कारण कभी–कभी तो प्राकृतिक जरूरत के हिसाब की खुराक भी

नहीं ले पाते हैं। लोकतन्त्र आर्थिक व्यवस्था में एक वर्ग, जोकि अधिकतर लोगों के वोट पाकर सरकार बनाते है, उसी वर्ग को वोट देने वाले के हित में काम करते है और दूसरे अल्पसंख्यक लोगों के समूह का पूरा–पूरा हित सम्भव नहीं हो पाता है। तीसरे प्रकार की अर्थव्यवस्था, अर्थात् कम्यूनिज्म, में कर्मचारी वर्ग और मालिक वर्ग में गुटबंदी होती है और एक वर्ग दूसरे वर्ग से लगातार संघर्ष करता रहता है; इस संघर्ष में हिंसात्मक संघर्ष पर भी विश्वास रहता है। निश्चित ही इस तरह की स्थिति का अर्थशास्त्र सभी मानवों का हितैशी नहीं होता है। फिर क्या करें? गांधी की नीति व नीति नियमों आधारित अर्थशास्त्र ही सभी मानवों को समान समझकर सबके साथ समान व्यवहार किये जाने का रास्ता है। नैतिक वस्तु, भौतिक वस्तुओं से अधिक महत्व की होती है क्योंकि इसमें आन्तरिक व व्यवहारिक दोनों पक्ष निहित होते है; इस तरह की अर्थव्यवस्था में यह माना जाता है कि कोई भी वस्तु किसी एक या किन्ही लोगों के वर्ग की नहीं है बल्कि सभी वस्तुओं के मालिक व अधिकारी सभी लोग हैं; यह भी पाते है कि इसमें लोगों के अन्दर 'मैं–पन' 'मेरा–पन' व 'मेरी–पन' नहीं होता है; गांधीयन अर्थव्यवस्था में नैतिक वस्तु या सेवा का मूल्य कभी भी भौतिक वस्तु/ धन से नहीं तौला जाता है; सभी लोगों (राजा व रंक दोनों) के लिये नैतिक मूल्य, नैतिक कर्म तथा नैतिक धर्म अनिवार्य व समान होते हैं और इसी आधार पर सभी का पोषण एक जैसा होता है; इस अर्थव्यवस्था में शारीरिक श्रम करने वाले को, मानसिक श्रम करने वालों की तुलना में, बराबर की इज्जत व बराबर मजदूरी दी जाती है; नैतिकता को सबसे पहला व सबसे उच्च कर्म व धर्म माना जाता है। परिणामस्वरूप सबका विकास, समान विकास – सबका विकास, सन्तुलित विकास होता है। छोटे–छोटे गाँव/स्थान और उसके निवासी वहाँ उपलब्ध संसाधनों के आधार पर स्वावलम्बी होते हैं, पूर्णतः व विकेन्द्रित अर्थ व्यवस्था व विकास होते हैं। छोटे–बड़े का भेद–भाव नहीं रहता है; कोई किसी पर आश्रित नहीं रहता है; किसी की स्थिति से कोई भी किसी भी प्रकार का गैर–जायज फायदा नहीं उठाता है; भौतिक उपलब्धि का लोभ नहीं होता है; तथा एक आत्मा दूसरी आत्मा की दास नहीं होती है। सभी लोगों का उद्देश्य मानव की सेवा करना होता है; सर्वव्यापी व सार्वकालिक सत्य (अर्थात् प्रकृति, प्रकृति बनाने वाले, और उसके नियमों) की प्राप्ति में लीन रहते है; मानवता बनाये रखना सभी का उद्देश्य होता है; क्रोध, राग, द्वेष, घृणा, हिंसा नहीं होती है; शान्त, सुखी, संयमी व सन्तोषी जीवन होता है; सभी किसी पर भी बिना अधिकार रखने की भावना के कत्वर्यपालन करते रहते हैं; सभी में आपस में प्रेम होता है, आत्मबल होता और आत्मबली होने के नाते हमेशा साहसपूर्वक व निडरतापूर्वक व दूसरों के हित सेवा में कष्ट सहते हुए आत्मबलिदान करने को तत्पर रहते हैं। जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की जरूरत से ज्यादा वस्तु संग्रह नहीं किया जाता है।

अतः, शोध–प्रश्न 1 व 3 (नीति, नीति नियम व नीति शिक्षा) के सम्बन्ध में व्यक्त विवेचन व निष्कर्ष तथा उपरोक्त वर्णन के मद्देनजर शोध–प्रश्न 6, 9 व 11 के सम्बन्ध में शोधिका ने यह पाया :–

कि 'नीति शिक्षा'' बेरोजगारी की स्थिति का कारक नहीं होगी और 'नीति शिक्षा' विद्यमान बेरोजगारी को दूर करने में सहायक होगी –(शोध–प्रश्न 6 के सम्बन्ध में)।

कि 'नीति शिक्षा'' गरीबी की स्थिति पर काबू पा सकेगी – (शोध–प्रश्न 9 के सम्बन्ध में)।

कि 'नीति शिक्षा'' वैश्वीकरण में बाधा नहीं होगी, बल्कि विश्वमानव और विश्वबन्धुत्व बनाने में सक्षम है – (शोध–प्रश्न 11 के सम्बन्ध में)।

शोध–प्रश्न 1, 3, 6, 9 व 11 के सम्बन्ध में ऊपर व्यक्त किये गये विवेचन व निष्कर्ष के अलावा, शोध–प्रश्न 10– कि क्या 'नीति शिक्षा' वैज्ञानिक व तकनीकी विकास में बाधा नहीं होगी – के सम्बन्ध में निम्न वास्तविकतायें भी पायी गयी हैं। इंद्रियजनित विज्ञान का एक पक्ष तो होता है, शुद्ध विज्ञान। इसमें किन्ही सिद्धांतों या नवीन सिद्धांतों आदि के लिए अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार का विज्ञान ज्ञात सिद्धांतों के आधार पर स्वंय वस्तुओं का उत्पादन नहीं करता है। इंद्रिय–जनित विज्ञान का दूसरा पक्ष होता है, शुद्ध विज्ञान के निष्कर्षों या ज्ञात ज्ञान या सिद्धांतों का अनुप्रयोग करके कोई मशीनरी, यंत्र, औजार और उपभोग की वस्तुओं आदि का निर्माण करना। इसको यंत्र/तकनीकी विकास कहते हैं। शक्ति की दृष्टि से भी इंद्रिय–जनित विज्ञान के दो पक्ष होते हैं। पहला पक्ष होता है कि विज्ञान के अनुप्रयोग से ऐसी वस्तुएं बनें जो की रचनात्मक व रक्षात्मक प्रकृति की हों, अर्थात् जीव–निर्जीव के जीने की आधारभूत आवश्यक आवश्यकता की पूर्ति में जो सहायक हों या उनके स्वास्थ्य रक्षा में सहायक हों। शक्ति की दृष्टि से विज्ञान का दूसरा पक्ष होता है, विध्वंसात्मक। अर्थात्, जो सृष्टि के नियमों में दखलंदाजी करें, जिससे मारकाट, हिंसा, जीवन नाश, आदि हों। विज्ञान के अनुप्रयोग से बम, हथियार, ववृहद स्तर पर उत्पादन करने वाली मशीनें, ऐशो–आराम की वस्तुएं, अनावश्यक उपयोग की वस्तुएं आदि वस्तुऐं बनती हैं। ऐसी वस्तुओं के उत्पादन से बेरोजगारी, गरीबी, भ्रष्टाचार, दुश्मनी, आगे बढ़ने की होड़, भाई–भाई में भेदभाव, पड़ोसियों से भेदभाव, अनावश्यक रहन–सहन की श्रेणियों का निर्माण, ऊँच–नीच का भाव, गरीब–अमीर वर्ग, प्रदूषित पर्यावरण, एक की स्थिति/परिस्थिति से दूसरे के द्वारा लाभ उठाना, जीत–हार का भाव, आतंकवाद, जीव–निर्जीव के जीवन को खतरा, क्रोध–राग–द्वेष आदि बुराइयां उत्पन्न होती हैं जो कि मानव को पशु प्रवृत्ति का बना देती हैं और कलह, शोक, विषाद आदि नवीन समस्याओं को जन्म देती हैं। दूसरी ओर विज्ञान का रचनात्मक उद्देश्य से अनुप्रयोग करके ऐसी स्थिति भी उत्पन्न की जा सकती है

जिससे मानवीय गुणों में बढ़त हो, व्यक्तियों में आपस में अपनापन बढ़े, प्रेम उत्पन्न हो, जीवनयापन सहज व सरल बने, प्राकृतिक आपदाओं से जान–माल की हानि रूके, पर्यावरण स्वस्थ रहे, व्यक्तियों के स्वास्थ्य की रक्षा हो, लोग स्वावलंबी बनें आदि।

इस प्रकार ज्ञात होता है कि विज्ञान स्वयं में बुरा नहीं होता है। विज्ञान तो अच्छा होता है। मानव की अभौतिक या मस्तिष्कीयशक्ति के स्वभाव अनुसार विज्ञान होना ही है। तो फिर बुरा क्या है? बुरा है विज्ञान का अनुप्रयोग। अनुप्रयोग वह भी ऐसी तकनीक, मशीन, औजार, अस्त्र–शस्त्र, वस्तुओं, ऐशो–आराम की जरूरतों को पूरा करने वाली चीजें बनाना व विकसित करना, जिससे मानवीय गुणों को हानि पहुंचती है, व मानवीय मूल्यों व मानव का नाश होता है। फिर भी बड़ी–बड़ी मशीनों का निर्माण व जीव–निर्जीव के लिये घातक चीजों का निर्माण किया गया। वृहद स्तर का उत्पादन करने वाली मशीनों का निर्माण करने के पीछे एक ही उद्देश्य था और वह भी धन संपन्न लोगों का। वह था कि ऐन–केन–प्रकारेण विज्ञान व तकनीकी विकास के नाम पर जितना अधिक–से–अधिक हो सके दूसरे व्यक्तियों से धन लूटा जाए और अपने पास अधिक–से–अधिक धन एकत्र किया जाए। इस प्रकार इंद्रियजनित विज्ञान की उपलब्धियों का उपयोग करके यंत्र–कला/तकनीकें विकसित करने का दुरुपयोग करना आरंभ हुआ। परिणाम यह हुआ कि गिने–चुने लोगों के पास जीवनयापन के लिए मूलभूत आवश्यक आवश्यकताओं की जरूरत की चीजों के अतिरिक्त भौतिक वस्तुओं, धन–सम्पदा, साधन बहुत ज्यादा तादाद में एकत्र होने लगे। इन गिने चुने लोगों ने अपने धन के दुरूपयोग से राजनीतिक सत्ता अपने कब्जे में कर ली और इन गिने–चुने पूँजीपतियों/धनवानों सरकारी और मुनाफाखोरों ने मानव समाज में मानवीय मूल्यों को व मानव को नुकसान पहुँचा कर बर्बाद कर दिया। और साथ ही समाज भी भौतिकता के मिथ्या चक्रव्यूह में फँस गया।यदि समाज व समाज के लोग उक्त गिने–चुने पूँजीपतियों को,राजनीतिज्ञों को, तथाकथित सामाजिक नेताओं को,घातक अस्त्र–शस्त्र के निर्माण करने वाले को और सरकारों को साथ नहीं देते, तो विज्ञान का अनुप्रयोग एक वरदान की तरह होता और माननीय बंधुत्व को बल मिलता, आपस में प्रेम–मोहब्बत, भाईचारा, स्नेह, सहयोग, सह–अस्तित्व और अहिंसा फैलती बजाए आजकल विधमान मार–काट, हिंसा, लूट–खसोट, भ्रष्टाचार, आतंकवाद, युद्ध, गरीबी, बेरोजगारी, अमीर–गरीब भेदभाव व अमीर–गरीब भेदभाव की बहुत बड़ी खाई ऊँच–नीच भावना, दूसरों पर विजय पाने की होड़, दूसरों को नुकसान पहुँचाने आदि मानवीयता हेतु अनापेक्षित स्थिति व बुराइयोंकी। बजाए उक्त मानव मूल्यों के तथाकथित आर्थिक रुप से धनवान, सरकार व इनकी मिलीभगत की दुर्भावनाओं व दुष्कृत्यों को कुचलने के समाज में इनको सहारा इस बात को मानकर भी दिया कि उक्त बुराइयों व दुष्परिणामों की रोकथाम व नियंत्रण कानून बनाकर किया जा सकता है; अर्थात्, शक्ति का उपयोग करके; अर्थात्, अहिंसा का पालन न करके।

इससे साफ–साफ पाया गया है कि समाज के लोगों को ही निर्णय लेना चाहिए कि इंद्रिय–जनित विज्ञान की उपलब्धियों का इस्तेमाल करके किस प्रकार के यंत्र/तकनीक आदि का निर्माण किया जाए ताकि मानवीयता बनायी जा सके व बनायी रखी जा सके और स्थानीय लोगों व समाज की विद्यमान व वर्तमान समय को देखते हुए इनके अनुकूल ही तकनीकी विकास हो।स्पष्ट है कि मानवीयता संधारण व चैन–अमन बनाए रखने का शांतिपूर्ण एक ही तरीका है, और वह है कि सभी लोगों द्वारा तथा विज्ञान व तकनीकी विकास में अहिंसा नियम का पालना की जाए। और इसलिए परम आवश्यक है, लोगों में आत्म–ज्ञान व आत्मबल होना और वह हो सकता है आध्यात्म द्वारा, मानव–सेवा–धर्म निभाने के द्वारा, आत्मबलिदान द्वारा, साहस द्वारा, सहनशीलता द्वारा, इच्छाओं पर नियंत्रण रखने के द्वारा, कर्म–इंद्रियों व ज्ञानेंद्रियों के विषयभोग से स्वंय को दूर रखने के द्वारा, त्याग द्वारा, तपस्या द्वारा, मोहहीनता द्वारा, स्वार्थविहीनता द्वारा, सद्व्यवहार द्वारा, सदाचार द्वारा, सद्विचार द्वारा,'मैं–पन' व 'मेरा–पन'/'मेरी–पन' की भावना न आने देने के द्वारा, तथा निःसन्देह सत्याग्रह द्वारा, और निःसंदेह गांधी की दृष्टि के उक्त ग्यारह नीति नियमों के द्वारा।

दूसरी बात है कि मनुष्य यंत्र नहीं है, मनुष्य मात्र हाड़–माँस का पुतला नहीं है, मनुष्य में अदृश्य भौतिक चेतना की शक्ति विद्यमान है। इसलिए इंद्रिय–जनित तथाकथित विज्ञान; जोकि भौतिक वस्तुओं मात्र का ही अध्ययन करता है और उसके संबंध में ही खोज करता है और निष्कर्ष निकालता है; के नियम चेतनायुक्त व्यक्तियों/मनुष्यों पर लागू नहीं है और कदापिनहीं हो सकते हैं। मानव में चेतना अदृश्य शक्ति होती है, जिसको मानव में निहित ज्ञानेंद्रियों व कर्म–इंद्रियों द्वारा न तो देखा जा सकता है, न सुना जा सकता है और न ही स्पर्श किया जा सकता है आदि। मानव में निहित चैतन्य शक्ति को सिर्फ आंतरिक–अनुभूति के द्वारा ही जाना जा सकता है, और जाना भी गया है। आधुनिक वैज्ञानिक भी इस चेतन शक्ति की अनुभूति प्राप्त कर सकते हैं। यह चेतन शक्ति ही मात्र है, जिसकी बदौलत व्यक्ति एक दूसरे से प्यार करता है; एक दूसरे के लिए त्याग करता है; दूसरों की सेवा करता है; व्यक्तियों को उदार व निस्वार्थी बनाता है; एक व्यक्ति दूसरों को अपने समान और एक अदृश्य शक्ति द्वारा उत्पन्न मानता है; व्यक्ति दूसरों को शारीरिक, मानसिक व आर्थिक किसी भी प्रकार की क्षति पहुंचाने के बारे में विचार/ आशय भी नहीं रखता है, क्षति पहुँचाना तो दूर की बात है; व्यक्ति सृष्टि में सह अस्तित्व, सहकार, सहयोग, दूसरों पर आश्रितता, एक दूसरे के प्रति सहानुभूति आदि के बातों को समझता है और उसके अनुसार व्यवहार भी करता है। यह चैतन्य अनुभूति ही नीति का और नीति नियमों का बोध कराती है; व्यक्तियों को नीति नियमों की अनुपालना कराती है; और नैतिक व्यवहार करना सिखाती है। यह नीति नियम, अहिंसा, नम्रता, अस्तेय, अपरिग्रह आदि ग्यारह नियम व्यक्तियों को सत्ता, धन व संपत्ति, शरीर आदि का भोग करना नहीं सिखाते हैं। नीति नियम का पालन अपने बड़प्पन जताने के लिए या अपने फायदे के लिए या दूसरों पर उपकार करने को जताने के

लिए या दूसरों पर अधिकार जताने आदि के लिए नहीं किया जाता है। बल्कि प्राकृतिक कर्तव्य व धर्म निभाने के लिए किए जाते हैं। किंतु मात्र भौतिक पदार्थों व इंद्रियानुभव वस्तुओं पर ही विश्वास करने वाले वर्तमान के विज्ञान व तकनीक को सब कुछ मानने वालों,तथा बुद्धि को ही अपना स्वामी समझने वालों ने नैतिकता, नीति व नीति नियम को नष्ट करना शुरू कर दिया, क्षतिग्रस्त कर दिया और उसको अस्तित्वहीन मान लिया। ऐसे भौतिकवादी/ पदार्थवादी विज्ञान को मानने वाले भी इच्छा–अनिच्छाऔर जाने–अनजाने में नीति व नीति नियमों/नीतियों वाली बातों में से कभी ये और कभी वो कोअनियमितरुप से पालन करते हैं। यानी,नीति नियमों में से एक समय कोई बात और दूसरे समय कोई अन्य बात की पालना करते हैं; लेकिन उन्हीं स्थितियों में कभी पालनानहीं की। और भी, आजकल का तथाकथित इंद्रिय–जनित भौतिकवादी/ पदार्थवादी विज्ञान सृष्टि–जनक,सृष्टि,व सृष्टि नियमों का रहस्य जान भी नहीं सका है; मात्र रहस्यों की कुंजी ढूंढ़ने में व्यस्त हैं। फिर भी इस अपूर्णता की स्थिति में अपने को ही पूर्ण सत्य मानने की और जिसकी वास्तव में सदियों से अनुभूति की जाती रही है, की जा रही है, व की जा सकती है, उसकी सत्यता को मात्र स्वार्थवश, जिद्दवश व निराधाररूप से नकारते हैं। नीति नियम की पालना से उत्पन्न नैतिक मूल्य तभी पैदा होते हैं जब व्यक्ति नीति/सत्य को समझे और उसके अस्तित्व को स्वीकारते हुए सत्याग्रह हेतु नीति नियमों की पालना करे। इससे भी बुरी बात भौतिकवादी /पदार्थवादी मात्र इन्द्रियों जनित तथाकथित आज के विज्ञान की यह है कि इससे नैतिक व्यवहार को करने का कोई आधार उजागर नहीं होता है और न ही उसको करने की कोई प्रेरणा ही मिलती है; हालाँकि उक्त विज्ञान के वैज्ञानिक अनियमित रूप से एवं अप्रत्यक्ष रूप से नैतिक व्यवहार करते हैं। लेकिन जाने–अनजाने किए गए या कभी किए गए और कभी नहीं किए गए, या कुछ की पालना की गई और अन्य की नहीं, या किसी नियम की आधी–अधूरी अनुपालना करनेसे उक्त नैतिक व्यवहार को भी वास्तव में नीति नियम अनुपालना नहीं कह सकते क्योंकि नैतिक नियम पूर्ण है, स्थाई है,हरक्षण व्यवहार किए जाने वाले हैं, सभी की पूरी–पूरी अनुपालना करना परम आवश्यक है। भौतिकवादी/पदार्थवादी मात्र इंद्रिय–जनित विज्ञान का फिर क्या महत्व आजकल गाना गाया जाता है? इसलिए कि इसके उपयोग से मिलती है, धन, दौलत, संपत्ति, शोहरत, इज्जत, प्रशंसा,दूसरों पर रौब जमाने की शक्ति, दूसरों को गुलाम बनाने की शक्ति, दूसरों को क्षति पहुंचाने की ताकत, दूसरों को नाश करने की शक्ति आदि मानवता विरोधी भौतिक समृद्धि जाने जाने वाली स्थितियां और इन स्थितियों का परिणाम पूरे विश्व में सभी को दिख रहा है और सभी इनसे पीड़ित हैं। हर व्यक्ति व देश दूसरों पर शासन करने की होड़ में लगा है, हर व्यक्ति व राष्ट्र में कभी न बुझने वाली प्यास है कि और अधिक चाहिए, और भी अधिक चाहिए, सबसे अधिक चाहिए, और–तो–और धर्म, कला,व दर्शन भी ऐसी प्यास के चक्रव्यूह में फंस चुके हैं। परिणाम, वही कि कोई किसी का नहीं, जबकि प्राकृतिक तौर से सब एक दूसरे के लिए ही है,

और सब का अस्तित्व सह–अस्तित्व आधारित है। सुख, शांति, संतोष, निश्चिंतता, स्वतंत्रता, जानमाल–रक्षा आदि सब कुछ छिन चुका है विश्व भर के मनुष्यों से।

कैसे सुधरे यह स्थिति, प्रश्न पर विचार करते हैं तो पाया कि गांधी दृष्टि व नीति नियम की शिक्षा से आज के बालकों को नीति परायणता व नीति नियम पालना में अभ्यस्त बनाकर कल हम पूरे विश्व के मनुष्य को नीति में और नीति नियम पालना में अभ्यस्त पा सकते हैं। इसके लिए जरूरी है कि सभी लोग अपनी–अपनी इच्छा से और स्वानुशासन से बिना किसी भी प्रकार के कानूनरूपी या अन्य किसी दबाव के अपनी शारीरिक भूख, भोग व इच्छाओं को कम करते चलने की आदत डालें। आवश्यकता है, अहिंसा के सिद्धांत को अनिवार्य रूप से व व्यक्तिगत तथा सामूहिक रुप से अनुपालना किए जाने की। निहायत जरूरी माँग है कि स्वयं की इच्छाएं कम कर व स्थानीय स्थित संसाधन से पूर्ति आवश्यक्ताओं की करें, किंतु विचारों का वैश्वीकरण करें। छोटे–छोटे स्थानों पर आधारित भौतिक वस्तुओं की उपलब्धता पर ही आधारित जीवनयापन करें दूर–दराज की स्थितियों पर नहीं। पहले अपने छोटे–छोटे समूहों में स्थानों पर रहने वाले उक्त छोटे–छोटे स्थानों के पड़ोसियों की स्थितियों में सुधार करें। स्पष्ट है कि सृष्टि ने स्वयं ही हर विशिष्ट स्थान पर उस स्थान पर रहने वालों के लिए प्राकृतिक रूप से स्वच्छ, शारीरिक व मानसिक रूप से स्वस्थ रहने की अवस्था बनाए रखने के लिए आवश्यक वस्तुओं को स्वयं प्रदान कर रखा है। और इसलिए लोगों को विशिष्ट छोटे–छोटे स्थानों पर उपलब्ध वस्तुओं पर ही जीवन जीना चाहिए और शारीरिक श्रम करते हुए उसी से अपना ज्ञान बढ़ाए और विश्व स्तर पर समरसता पैदा करें। आवश्यकता इन बातों की है कि सभी लोग 1. स्व–अनुशासित रहें; 2. स्व–व्यवस्थित रहे;3. सभी के प्रति समानतापूर्व, सहअस्तित्वपूर्ण, सहानुभूतिपूर्ण भावना रखें; 4. स्वतंत्रतापूर्ण दूसरों के प्रति सर्वस्य त्याग करते हुए निर्भयता से जीवन जियें;5. प्रकृति और संस्कृति के बीच सामंजस्य बनाए रखते हुए जियें; 6. व्यक्तिगत स्वतंत्रता तो रखें किंतु दूसरे व्यक्तियों को अपने दल का सदस्य समझते हुए उनकी स्वतंत्रता बनाए रखने में सहयोग दें तथा अपने दल और इस प्रकार के अन्य दलों के प्रति उत्तरदायी रहें। विज्ञान चूँकि मानव मस्तिष्क की अपरिहार्य प्रवृत्ति है, इसलिए उसेकरते रहें और इसका लाभ जीव–निर्जीव को देते रहें। छोटे–छोटे स्थानों पर और ऐसे स्थानों पर, जहाँ से निकलना/ आना कष्टप्रद हो, परमाणु शक्ति का लाभ पहुँचाएं ताकि वहाँ के निवासी तो आत्मनिर्भर बनेंगे ही, साथ ही सामूहिक आत्मनिर्भरता कायम होगी और बड़े स्तर पर मानवीय संबंध बनेंगे। मानव सेवा धर्म का निर्वाह करने हेतु प्रत्येक व्यक्ति को 'मैं पन''मेरा–पन''मेरी–पन' की भावना नहीं रखना चाहिए; पशुबल(शारीरिक बल) के स्थान पर आत्म–ज्ञान द्वारा आत्मबल प्राप्त करें और आत्मबलिदान करें; जीवन के हर क्षण सोते–जागते, उठते–बैठते, चलते–फिरते अहिंसा का पालन करें; सर्वधर्म समभाव रखें और अपने–अपने धर्मों की उन्नति करते रहें; आवश्यकताओं को स्थानीय वस्तुओं से पूर्ति करेंकिंतु विचारों का ग्लोबलाइजेशन/वैश्वीकरण

करें; ज्ञान–विज्ञान विस्तृत करें; जीवन सादा, विचार उच्च सिद्धांत का पालन करें; भौतिक अस्तित्व सीमित, किंतु विवेक विश्व व्यापी सिद्धांत की पालना करें; विश्व प्रेमी वा शुभेच्छु रहें किंतु उपभोग स्थानीय वस्तुओं का ही करें और वह भी मात्र जीवन के लिए निहायत जरूरी मूलभूत आवश्यकता की पूर्ति हेतु; विलासिता बिल्कुल नहीं रखें। *अतः, शोधिका ने यह पाया है कि ये सभी बातें गांधी की दृष्टि की नीति, नीति नियम, और नीति शिक्षा में समाहित हैं। इन बातों तथा साथ में अन्य और बातों जिनके बारे में शोध–प्रश्न 1, 3, 6, 9 व 11 में लिखा गया है, के मद्दे नजर तथा इस शोध–प्रश्न के सम्बन्ध में विशेषरुप से ऊपर वर्णित बातों के मद्दे नजर शोधिका ने निष्कर्षरुपेण यह पाया है कि 'नीति शिक्षा' वैज्ञानिक व तकनीकी विकास में बाधा नहीं होगी, बल्कि इससे संसार सुखमय, शांतिमय और अहिंसापालक होगा और संसार में विधमान अनेक विषम स्थितियां भी दूर होंगी।*

7.2 संस्तुतियाँ

1. उच्च पदों पर आसीन होना तथा उच्च पदों पर आसीन होने कीप्रतियोगिता परीक्षाओं में सफलता पाना उद्देश्य होता है, अधिकतर विद्यार्थियों का। बालक/किशोर यह भी सोचते हैं कि उच्च शिक्षा प्राप्त करने व कम्पीटीशन के लिये पढ़ायी करने के श्रम, समय व धन के एवज में उच्च पदों पर होने के बाद भी उतना धन व यश नहीं कमाया जाता, जितना राजनीति में।

बहुत से विद्यार्थी डाक्टर व इन्जीनियर बनने का ध्येय रखते हैं ताकि अधिक–से–अधिक धन व इज्जत कमायाजाये।

कुल मिलाकर, हर बालक/किशोर धन व इज्जत के पीछे जी रहा है। उनके माता–पिता समर्थन करते हैं।

अतः आवश्यकता है माता–पिता व बच्चों को ऐसी शिक्षा दिये जाने की कि वो यह समझें कि संसार में धनबल से महत्वपूर्ण हैं आत्मबल, आत्मबलिदान, सादा जीवन व उच्च विचार तथा समस्त प्राणिमात्र की सेवा है और उससे उनकों जीवनभर सुख–शान्ति–सन्तोष और आत्मिक आन्नद मिलेगा। इसलिये आवश्यक है कि गांधी की दृष्टि की नीति शिक्षा बच्चों को पहले घर मे देना प्रारम्भ करें और फिर शाला में।

2. स्कूलों में 'नीति शिक्षा' एक विषयरूप में रखा जाये और विद्यार्थी की प्रगति की लगातार जाँच करते रहें ताकि शाला से विद्यार्थी पूर्ण मनुष्यत्व लिये हुए निकलें।

3.'नीति शिक्षा'' वर्तमानकाल में कार्यान्वित करना बहुत जरूरी है।

4.शिक्षा सम्बन्धी गांधी की दृष्टि नीति शिक्षा देने के लिये गांधी द्वारा बतायी गयी विशेषताओं वाले शिक्षकों को बनाने के लिये समुचित कार्यवाही की जानी चाहिये।

5. यदि विश्व में अन्य देश पहल न करें, तो कम से कम भारत सरकार को तो 'नीति शिक्षा'' के प्रचलन के लिये शिक्षा–नीति बनाना चाहिये और देश में यथोचित तरह से लागू करना चाहिये।

6.'नीति शिक्षा'' के द्वारा विश्वव्यापी शैक्षिक–क्रान्ति लाने की आवश्यकता हैं। इसके लिये शिक्षक समुदाय देश–विदेश के संगठनों को प्रयत्न करना चाहिये और जुट जाना चाहिये।

7. दूसरों की ओर बिना देखे प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा के सम्बन्ध में गांधी की दृष्टि की 'नीति' के पालन में अभी व आज से ही लग जाना चाहिये और अपनी–अपनी प्रगति की जाँच समय–समय पर करते रहना चाहिये।

7.3 भावी शोध हेतु सुझाव

1. गांधी की दृष्टि की नीति शिक्षा दिये जाने वास्ते प्रयोजनीय प्राथमिक व माध्यमिक विद्यालयों में सिखायी जा सकने वाली क्रियायें/प्रयोगों को जानने व निश्चत करने के विषय में शोध करने की आवश्यकता है।

2. गांधी की दृष्टि की नीति शिक्षा दिये जाने वास्ते प्रयोजनीय प्राथमिक व माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षण हेतु शिक्षण–मॉडल्स को शोध द्वारा ईजाद किये जाने की आवश्यकता है।

3. मानवमूल्यों वास्ते नीति, नैतिक, चरित्र और मूल्यों आदि अलग–अलग नामों से विश्व के अलग–अलग क्षेत्रों में शिक्षा दी जाती है। अतः नीति, नैतिक, चरित्र और मूल्य नामक शिक्षा के बजाय, विश्वव्यापकरूप से सिर्फ गांधी की दृष्टि की 'नीति शिक्षा' दिये जाने वास्ते अधिक–से–अधिकशोध करना उचित पाया जाता है।

4. वास्तव में गांधी के शैक्षिक विचार विश्व के समस्त देशों के लिये स्पष्टतः व तार्किकतः उपयुक्त हैं, इसलिये गांधी के शैक्षिक विचार पर विश्वस्तर पर व्यापकतौर पर शोध किये जाने की आवश्यकता है।

5. प्राथमिक व माध्यमिक विद्यालयों में उद्यम आधारित शिक्षण हेतु शिक्षण–मॉडल्स को शोध द्वारा बनाये जाने की आवश्यकता है।

7.4 शोध का परिसीमन

इस शोध की सीमा गांधी रचित 'हिन्द स्वराज' के 'शिक्षा' अध्याय तथा 'मंगल प्रभात' के परिप्रेक्ष्य में 'नीति शिक्षा'' / नीति की शिक्षा सम्बन्धी गांधी के विचारों का अध्ययन गुणात्मक व दार्शनिक अध्ययन द्वारा करने तक है, और वो भी पूर्वोक्त बारह (12) शोध प्रश्नों तक है।